प्रबोधचन्द्रोदय नाटक ।

पण्डित श्रीकृष्ण मिश्रने संस्कृत भाषा मे
किया ।

फोर्ट उइलियम कालेज के पण्डित

श्रीजगन्नाथ सुक्ल ने
हिन्दी भाषामे
अनुवाद किया

कलकत्ता ।

निमतला घाट इष्ट्रीट ८ नंबर
मोकान मे श्रीयुतबाबु भुवनचन्द्र बसाक
के संवाद ज्ञानरत्नाकर यन्त्र मे छपी ।

संवत् १९३० ॥

१ अङ्कमें विवेक का उद्यम है
२ अङ्कमें महामोह का उद्योग है
३ अङ्कमें पाखण्ड-विडम्बना है
४ अङ्कमें विवेक का उद्योग है
५ अङ्कमें वैराग्यकी उत्पत्ति है
६ अङ्कमें प्रबोधकी उत्पत्ति है

विज्ञापन॥

इस संसार निर्वाह के हेत अति चतुर मनुष्य भी नानाविध कर्म्मों के करने से निरन्तर व्यग्र हो ज्ञान की चर्चा से रहित भये हैं इस कारण से जो कुछ ज्ञान उनके हृदय में रहा सो भी अज्ञान अन्धकार से आच्छन्न हो रहा है, तो उपनिषद कहे वेद का ज्ञान कांड जिस को वेदान्त कहते हैं उसके विना अर्थात् तत्त्वज्ञान रूप भानु के उदय विना वह अज्ञान अन्धकार दूर कैसे कर होवे यद्यपि वेदान्त शास्त्र वर्त्तमान है परन्तु अतिकठिनता औ गौरवता के कारण पण्डित जनों को भी असाध्य सा भया है इसी हेतु सें पण्डित श्रीकृष्ण मिश्रजीने एक कौतुकका प्रसङ्ग उठायकर प्रबोधचन्द्रोदय नाम नाटक अति छोटासा ग्रन्थसंस्कृत भाषा मे श्लोक बद्ध बनया, परन्तु वहभी संस्कृत भाषा के कारण से पण्डित जनों को छोड़ साधारण मनुष्यों के मनको प्रसन्न नहीं करता है, इस हेतु से फोर्ट विलियम कालेज के पंडित श्रीजगन्नाथ शुक्ल कान्यकुब्जब्राह्मणने संवत् १८३०मे संस्कृत से

हिन्दी भाषा मे यथामति अनुवाद किया परन्तु कहीं कुछ छोड़ भी कहीं कुछ मिलाय भी दिया है।

और श्रीभुवनचन्द्र वसाकने अपने ज्ञानरत्नाकर नाम छापेखाने मे छापा है, और इसमे भी संस्कृत शब्द अनेक हैं क्यों कि उनके न रहने से अच्छी भी यह पोथी नही लगती, सो सर्व साधारण के निकट मेरी यह निपट प्रार्थना है कि एक बार ग्रंथ को आदि अन्त तक देख, भूल चूक सुधार, मेरे श्रम को सफल करैं।

यह पुस्तक कलकत्ता निमतला श्रीबाबु भुवनचन्द्र बसाक के छपेखाने मे मिलेगी इति।

कलकत्ता

१८७३ ईसवी २० नवेम्बर मे पूरी भई।

भाषा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक।

प्रथम अङ्क।

जैसे, अति वज्ञल चपलचित्त सुकुमारबुद्धि कुमारकों को, लोकरीति औ नीतिज्ञान होनेके अर्थ, नीतिनिपुण गुणप्रचुर परमचतुर पण्डित जन, काक कूर्म मृग शशक शृगाल आदि पशु पक्षीयें को चित्र विचित्र कथाके वहानेसे, नीति-शास्त्र का उपदेश करतेहैं, तैसेही, इस असार संसारके वीच, अत्यन्त अज्ञान अन्धकार से घेरे भये, जो निरन्तर विषय-कुपथगामी कामी मनुष्य, तिनके हृदयमे ज्ञानउदय होनेके हेत, ग्रन्थ-कार प्रबोधचन्द्रोदय नाम नाटक लीलाके छल से, तत्त्वज्ञान का उपदेश करने के लिये, ग्रन्थके आरंभ से, ग्रन्थप्रतिपाद्य जो तत्त्वज्ञान, तिसका प्रधान कारणस्वरूप जो परमार्थरूप निर्गुण ब्रह्म, तिसका उपादान कारण उपासना स्वरूप मंगलाचरण अति सुन्दर सुवासनासे करतेहैं.

मध्याह्नार्कमरीचिकास्विव पयःपूरो यदज्ञानतः।
खंवायुर्ज्वलनोजलं क्षितिरितित्रैलोक्यमुन्मीलति॥
यत्तत्त्वं विदुषांनिमीलतिपुनः स्रग्भोगिभोगोपमं।
सान्द्रानन्दमुपास्महे तदमलंस्वात्मावबोधं महः॥१।

अर्थ॥ अब हम उस नित्य सुखस्वरूप प्रीति विरोधरहित दीपकके समान स्वयं प्रकाशमान जोतिर्मय निर्गुण परब्रह्मकी उपासना करतेहैं, अर्थात् वेदवाक्यों के द्वारा से श्रवण औ अनेक प्रकारके कारणों से, अनुमान तथा वारवार स्मरण करतेहैं. कि जिसके विना जाने, आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी आदि तीन लोक मृग तृष्णाके समान मिथ्याभी सत्यरूपसे प्रकाशमान होतेहैं, अर्थात् जैसे मध्यान समयके सूर्यदेवकी किरणों के अनजान औ पिपासासे आतुरजीवों को, उस सूर्य्यप्रभासे जलप्रवाहकी भ्रम होतीहै; तैसेही, अतिप्रबल महामोह के मारे, अज्ञान अन्धकारसे विचारे अन्धजीवें को, तत्त्वज्ञानके विना अतिनिर्मल जोतिमय पर परब्रह्मसे, आकाशादि पञ्चभूतस्वरूप त्रैलोक्य की भ्रम होतीहै ; और मनुष्यों को जोतिरूप परब्रह्मसे

पञ्चभूतस्वरूप मिथ्या त्रैलोक्य की भ्रान्ति उत्पन्न होती, परन्तु ज्ञानी पुरुषों को तो तैसे भ्रमकारी दोष के अभाव अर्थात् न रहने से, ब्रह्ममें किसी प्रकारकी भ्रम नहीं होती अर्थात् जो ब्रह्मज्ञानी पुरुष हैं, वे तत्त्वज्ञानहेतुसे ब्रह्म मात्रही देखते और आकाशादि पञ्चीकृत पञ्च महाभूत प्रपञ्चरूप त्रैलोक्य को नहीं देखतेहैं.

निर्विघ्न ग्रन्थसमाप्तिके. अर्थ फेरभी मङ्गलाचरण करतेंहैं.

अन्तर्नाडीनियमितमरुल्लंघित ब्रह्मरन्ध्रम्,
स्वान्ते शान्तिप्रणयिनि समुन्मीलदानन्दसान्द्रम्।
प्रत्यग्ज्योतिर्जयतियमिनः स्पष्टलालाटनेत्र,
व्याजव्यक्तीकृतमिव जगद्व्यापिचन्द्रार्द्ध मौलेः।२।

अर्थ॥ जिनकी सकल इन्द्री विषयवासना से निवृत्त हैं, एवंभूत जो भूतनाथ महादेव, तिनकी चेतनस्वरूप जोति को अब हम नमस्कार करते है; कि, जो चेतनरूप जोति सुषुम्ना नाम नाडीमे अवरुद्ध जो प्राणस्वरूप वायु तिसके अवलम्बन से ब्रह्मरन्ध्रका स्पर्श कियाहै. और शान्ति रसके वीच निमग्न जो मानस, तिसमे

घन आनन्द स्वरूप जगतव्यापी परब्रह्म विराजमान है, अर्थात् जो अग्निस्वरूप तीसरा नेत्र शिवजीने अपने माथेमे धारण किया, सो नेत्र नहीं है; किन्तु मानो चेतन परब्रह्महीं जोति रूप लोचन के बहाने से ललाटपटल भेदकरके आय बाहिर प्रकाशमान भया है.

नान्दीपाठ करके सूत्रधार बोला, कि; और अति विस्तारसे मङ्गलाचरण पढने के आडम्बर का कुछ विशेष प्रयोजन अब नहीं हैं, बस करो.

अब श्रीमान महाराज कीर्तिवर्म्मदेव के परम मित्र जो श्रीगोपाल नामा मन्त्री, कि जिन के चरण युगल, मण्डलाधिपति नरपति के चूडामणिकी किरण समूहसे नीराजना को प्राप्त हैं, अर्थात् सकल भूपाल जिनसे युद्धमे पराजय पायकर शरण मे आय चरणों को प्रणाम करते हैं, और दुष्ट दुराचारी भूपरूप जो प्रलयकालके महासमुद्र तिनसे निमग्न कहे डूबी जाती, जो यह मही तिस के उद्धार करने को, जो गोपाल वाराह अवतारस्वरूप प्रसिद्ध भये; और उत्साहगुण-रूप प्रफुल्ल कुसुम औ नम्रतारूप

कोमल अमल पल्लवयुक्त कीर्तिलता के कुण्डल पहिराय दिग्रूप सुन्दरी स्त्रियों के कर्ण मण्डलको मण्डितकिया अर्थात् जिनकी कीर्तिने दिगन्तों को दीपित औ भूषित किया है; और जिनके प्रताप अनलने दिग्गजोंके कर्ण रूप ताल व्यजन की. वायु से संवर्द्धित हो, विपक्ष राजकुल रूप कानन को दग्ध किया.

सोई श्रीगोपाल भूमिपालने अब हमसे यह कहा, कि देखो हमारे परममित्र श्रीमहाराज कीर्तिवर्म देव जी की दिग्विजय के झंझटसे इतने दिन तक हमने ब्रह्मानन्दरसका कुछ सुख नहीं पाया, केवल नानाप्रकार विषयरस के आस्वाद ही से दिन बिताया, परन्तु अब हमारे सब काम सिद्ध होगये; और हम सुख ओर से निश्चिन्त भये हैं.

जिस हेतुसे कीर्ति वर्मदेव नृपति के विपक्ष क्षितिपति समूह के कुलकी अशेष-रूप क्षय भई, और नीति निधान बुद्धिमान मन्त्रियों के द्वारा अब पृथिवी की रक्षा औ राजकाज भी सब भली प्रकारसे होते हैं, और सात द्वीप

नव खण्डविशिष्ट इस ससागरा धराके ऊपर राजा कीर्तिवर्मदेव का एक छत्र अकण्टक राज वर्तमान हो रहा है, और अखिल भूपालों की मौलिमाला से महाराजके युगल चरणकमल पूजित हो रहे हैं, इसी हेतु से अब हम शान्ति रस के आस्वादन से अपने चित्त को ब्रह्मानन्द विनोद उत्पन्न करने की वडी इच्छा करते हैं।

इस हेतु से, महामहोपाध्याय पण्डित श्रीकृष्ण मिश्रने जो प्रबोधचन्द्रोदय नाम नाटक निर्माण करके जो तुमको समर्पण कियाथा, सोई प्रबोधचन्द्रोदय नामक नाटकको तुम अब कीर्तिवर्मदेव की सभारूप आकाशके अवकाशमे पूर्णचन्द्रके समान प्रकाशमानकरो, देखो राज सभाके महा महा महिम महान न सभासद लोग सब और महाराज आप भी उस महानाटक के देखनेकी वार वार उत्साह कर रहे हैं।

इससे अब हम एकवार अपने घर को जाय निज घरणी कोवुलाय लायकर सङ्गीत प्रबन्ध का आरम्भ करैं, इतना कह सूत्र-

धारने कुछ दूर जाय नेपथ्य अर्थात् वेषवनाने के तम्बू की ओर कुछ वेर तक अवलोकन कर निजपत्नी नटीको उच्चस्वरसे आह्वान करके कहा, कि एहो प्राणप्यारीजी! तुम सुनो नेक इहां तो आओ, यह सुन नटी वेषरचना रचे सुन्दरसुवेस कसे भूषन प्रति अङ्गनसे झमझमाती चली तो आय उस रङ्गभूमिमे प्रवेश कर निजपति सूत्रधारसे अति कोमल मधुर वचन वोली, कि हे प्राणनाथ! यही जो अब मैं आज्ञापाय आपके निकटआय प्राप्त भईहूं आज्ञा करिये कि कौन से संगीत प्रसंग को उठाऊं तब सूत्रधार बोला कि हां प्यारी! कौन ऐसी वात हैजो तुम से छिपीहै इस त्रैलोक्य के सकल वृत्तान्त को तो तुम जानतीहो इससे क्या झूठ है.

देखो जो गोपाल भूमिपालने असिधारामात्र की सहायतासे सकल शत्रुगणों की पराजय कर के कीर्तिवर्म नरपति को पुनर्वार राज्याधिकार मे राज्यतिलककर के राजसिंहासनपर वैठाया, और सपक्ष भी विपक्ष क्षितिपालों की

सेनारूप अरण्यके बीच जाज्वल्यमान जो निज प्रतापरूप दावानल तिसकी शिखास्वरूप कराल रसना के द्वारा जो त्रिभुवन के कररूप रस का आस्वादन करते औ ब्रह्माण्डके बीच निज कीर्ति बिस्तारते भये अबभी विराजमान हैं. और अबतकभी मदोन्मत्त राक्षसी गणों के चञ्चल करों से बजायेजाते जो कालवशभये नरोंकेसूखे कपाल तिनसे उठी जो खटखटा रूप खेमटे की अमङ्गल धुनि तिस को सुनि, पिशाचों की नग्न अङ्गना, जिसके रणअङ्गना के बीच से नित नित आय नृत्य करतीं हैं, औ रणभूमि में मृतक मत्त मातङ्गों के भयानक कुंभस्थलों के छिद्रों मे प्रवेश करती जो प्रचण्ड पवन तिससे उत्पन्न होते नीचे ऊंचे जो अनेक स्वर तिनके संहारे साथ मिले भये भयानक उत्कट रागों से जस का विजयरूप यश अबतक गानकरती हैं. प्रजास्वरूप तरुके आलवालरूप वही गोपालने अब शान्तहो शान्तिपथका अवलम्बन कर, अपने चित्तविनोद के अर्थ प्रबोधचन्द्रोदय नाम नाटक प्रकाश करनेकी आज्ञा हम को दिया

है, इससे तुम अब नर्तक सखी को शीघ्र वेशासामग्री रचनाकरने औ पहिरने की आज्ञा करो.

नटी निज पतिकी यह बात सुन सुध बुध भूल अवाक हो एकटक पतिकी, ओर कुछ देर देखती रही और फेर बोली कि प्रियतम! यह क्या आश्चर्य अचरज है कि जो गोपालने पूर्बकाल मे कराल काल के समान केवल निजभुजों के बलसे सकल राजमण्डल को जय किया, कि जैसे विष्णु भगवान ने क्षीर समुद्र को मंथनकर त्रिभुवन मोहनी लक्ष्मी जी को ग्रहण किया था, तैसेही गोपालने भी कर्ण की सेनारूप सागर को स्वभुजदण्डरूप मंदराचल से मंथन कर समरविजय लक्ष्मी को ग्रहण किया, देखो जिस समरसागरमंथन के समैमे कर्णपर्य्यन्त आकृष्ट जो अतिघोर कठोर धनुष तिससे वरसाई गई जो बाणधारा की झरी तिस की धार से अंग भंग जर्जरीभूतजो तुरंग सोई रंग रंग सागर के तरंग भये और निरन्तर चले जो तीव्र तीखेबाण औ सेल मूसल असि गदा आदि तिनसे विदीर्ण देह जो उत्तुङ्ग

मत्त मातंगसमूह तेई तिस समर समुद्र के बीच हजारों महापर्व्वतों के समान भये, और चक्र के समान भ्राम्यमाण जो भुजदण्डरूप मंदरपर्व्वत तिस के आघात से घायल घूमरहे जो समस्त पदातिगण सोई उस समुद्र के लोल कलोल जलरूप भये थे.

ऐसे प्रबल रजोगुण के गुण औ बलसे दुरन्त दुर्वृत्त गोपालको अब इस काल किस प्रकारसे सुन्दर ऐसी सुवासना भई कि, जिस से उनके चित्त गगन मे शान्तरसरूप पूर्ण शशांक उदय हो रजोगुण स्वरूप अन्धकार को दूर किया कि जिससे सकलजन औ साधुगण मुनिजनों के प्रसंशापात्र होकर लोक मे धन्यवाद पावैंगे ऐसी ऐसी कौतुकविशिष्ट शिष्ट परं परा की बातैं निज बधू नटीके मुखसे सुन सूत्रधारने उत्तर दिया कि हे प्रियतमे! यद्यपि सो गोपाल ऐसेही प्रचण्ड प्रतापशाली भये थे, कि जैसे तुमने कहा सत्यहै, पर तौभी ब्रह्मतेज किसी कारण बसते विकार को प्राप्तहो करके भी फेर अपने शुद्धसतोगुणस्वरूप का अवलंबन करता

कारण यह है कि सकल भूपाल कुलके प्रलय कालाग्निरुद्रस्वरूप के समान किसी राजासे निर्मूल उच्छेद भया जो कीर्तिवर्मदेव का राज्याधिकार तिस को पुनर्वार पृथिपर स्थापन करने के अर्थ गोपाल को ऐसे कठोर क्रूर कामों मे प्रवृत्ति भई थी परन्तु गोपाल स्वाभाविक दुष्ट दुरात्मा नहीं हैं. देखो प्रलयकालमे जो महा-समुद्र निजमर्याद को छोडकर कितने बड़े बड़े पर्व्वतों को उल्लंघनकर इस वसुधारा को जलमे निमग्न किया था, सोई महासमुद्र अब धैर्य्य अवलंबनकर निजमर्यादमे फेरभी है कि नही.

और देखो, भगवान नारायण के अंश भूत पौरुषयुक्त पृथिवीपर नाना अवतार ले अनेक अनेक कार्य्य संपादन करके सिद्ध कर के फेर अन्तमे शान्त स्वभावहो लोकके कुत्सित कर्म से निवृत्त भये हैं.

देखो कि, जैसे बाल वृद्ध वनितावों के बधसे अति निर्दय हृदय क्षत्रिय कुलघातक जगत् विख्यात परशुराम जीने तीक्ष्णधार अति कठोर कुठार से क्लीवंश राजसमूहों के शिर छेदन

कर उन की मज्जा मांस रूप पंकसे भरी रक्तकी नदीयें के रुधिर प्रवाहमे एकइस बार तर्पण-कर पितरों को सन्तुष्ट किया.

इस प्रकार पृथिका भार उतार अन्तको सोई परशुराम शान्तमति हो तपकरने के हेत वद्रिका आश्रम को चले गये, तैसेही गोपाल भी अब सब छोड़ शान्त स्वभाव भये हैं, और जैसे विवेक ने निर्विवेकरूप पराक्रम जो महा-मोह तिस को जीतकर प्रबोध चन्द्र की उदय किया है.

ऐसेही सूत्रधार कह रहा था कि इसी समैमे विवेकसे महामोह की पराजय सुनते ही नेपथ्य के भीतरसे अति वामस्वभाव कामदेव क्रोधपूर्व्वक चिलाकर ऊंचे स्वरसे बोला कि आ! अरे दुष्ट पापी दुरात्मा नटाधम कुशल ! क्षेम पूर्वक हमारे जीवते रहतेही तू मेरे स्वामी महामोह की विवेकसे पराजय कह रहा हैं. सूत्रधार ऐसे कठोर कुठोर मदनके वचन श्रवण कर सियरे वहुत प्रकारकही सम्भ्रमभरी आंखों सें नटी की ओर देखकर कहने लगा कि, हे

प्रिये! देखो यह वारूणी मद पानसे घुमरहीं जवाफूलसी आंखें जिन्हें देख धीरवीरभी मनसे धैर्यराखैं और अति उन्नत सांचेढार कठिन पीन पयोधर युगल शालिनी कुरवक कुसुम मालिनी विरति विहारनी रति की रोमांचभरी बाहुलता सेआलिंगित श्रीमान अति मनोहरकाय कामदेव त्रिभुवनको उन्मादरूप मदसे उन्मत्त करताभया आगमन करता है देखो सरोष परुष वचनों से यह जातक्रोधके ऐसा ज्ञात होता हैं, इससे अब हम को इस स्थान से प्रस्थानकर पलायन हीं मंगल औ उचित कर्त्तव्य कर्म्म है, नहीं तो कल्याण नहीं, यह कहकर सूत्रधार औ नटीने रंगस्थान से प्रस्थान किया॥ इति प्रस्तावना॥

तदनन्तर विरति से विरक्त नरोंकी दुर्गतिरूप रति औ रतिपति तैसेही मनोहर सुंदरवेश विविधवेश किये आय रंगप्रदेशमे प्रवेशकर काम देव अति क्रोधसे होता आः अरे पापरूप रे नटाधम! श्रवणकर कि यावत्कालपर्यन्त नीलोत्पल लोचना ललनागणके नैनबाणोंसे जनों का मन विद्वनहीं होता तावत्कालही मनुष्योंके मन

मे विवेक का अभिनिवेश रहता है, और वड़े वड़े महात्मा ज्ञानीध्यानी पण्डितजनों के मनमे भी तावत्कालपर्यन्तही यथा शास्त्र एक विवेक औ ज्ञानभानुका प्रकाश रहता है कि यावत् पर्यन्त कंज खंज मृग मीन नयनी रमणी कामिनीरूप तमिस्राभरी यामिनी निकट नहीं होतीं और उनके कज्जलरूपरंगभरे पंकज नैन शैन शानधरे तीव्र वानों के निशाने जौलों नही होते और तावत्पर्यन्तही उनका मान मर्य्याद माहात्म भी रहता है, क्या तूने नहीं देखा या नहीं सुना.

और देख, यावत्काल पर्यन्त मेरा प्रताप मनुष्यों के ऊपर नहीं व्यापता है, तावत्काल पर्य्यन्त, वे परमहंसी अवस्थाको प्राप्त, शत्रुमित्र उदासीन रहित, सबके हित, अनहित से दूर आनन्दसे भरपूर परम सुखसे रहते हैं; और जब वह मेरा तेज उनपर व्यापा तो उनकी वह अवस्था कहां? फेर तो वे यौवन ज्वरसे पीड़ित निर्लज्ज हो, नित नवयौवनों को ढूंढते फिरते हैं, देख, वडे वडे पण्डित औ ज्ञानियों

की जब यह दशा है, तो अज्ञानी औ मूर्खों वि-
चारों की क्या गिनती कि, जो विनतीकर सदा
काम के चेंरेही बने हैं, एरे, और देख कि जब
मैने अपनी प्रभुता खेंचली, तो मनुष्य औ क्या
कोई जीव काम के विना निकाम किसी काम
के नहीं रहते, केवल इधर उधर मारे मारे
फिरते, कोई बात को भी नहीं पूछते. वरन
देखके भी अपने पराये सब अपने सुख फेर
लेते, फेर तो उनको एक रामहीं से काम औ
रामका नामहीं रह जाता है. अरे मूढ गूढ ?
कपट छोड, मनमें ढूंढ देख कि कामिनी के
नैनवान तो दूर रहें. हमारी सेना के किसी
एक छोटे वीरके भी रहते. तेरा राजा विवेक
कदापि भी विजय नहीं पाय सकता और ह-
मारे तो वातही छोड दे, फेर जो विवेकसे
महामोहकी पराजय भई, यह तेरा कहना
वचन रचना सुख मात्र छोड और क्या है. एरे
मतिमन्द! जाना कि तेरे ऊपर साढे साती
मन्द आया कि जो चार घडीसे झूठी बकवात
कर रहा है.

और देख, सुन्दर शोभायमान सुधानिर्म्मित रमणीय घरों की अटारी, और मधुर मधुर झनकार रव करती अलिमालासे सुशोभिता लता, तथा ईषत् विकाशमान कुसुम समूह से भरी भई हरीहरी नवमल्लिका लता की सुन्दर सुगन्धसनी शीतल मन्द मलयाचलकी वायु औ गुञ्जायमान मधुकरों के करसे आकुल जो वकुलवन, तथा चन्द्रकिरणसे उज्वला यामिनी औ नवीना कामिनी कोकिला की कूक औ चातककी हूक, औ वीणा आदि वाद्य विशेषोंके मधुर स्वर, ए सब हमारें अमोघ शस्त्र जो चहुं ओर, अविहत गति औ जययुक्त विराजमान हैं, तो कहां है; विवेक औ कहांई वा प्रबोध अर्थात् केवल कामिनीके नैंन हीं विवेकके प्रति बन्धक नहीं किन्तु हमारे इन सब शस्त्रोंमे से एक एकभी विवेक का प्रतिबन्धक है. इस हेतुसे विवेक से जो महामोह का पराभव कथन, सो खपुष्प, वंध्यासुत, कूर्मक्षीर, नीरघृत मनोराज्य, शशविषाण औ स्वप्नके समान केवल वचनसुख छोड और क्या नाम है.

यह सुन, रति आरतियुत अधिक भीत होकर अनुरक्त निज पति रतिपति से कहने लगी, कि हे प्रियतम ! तुमारे स्वामी महा-मोहके प्रबल शत्रु विवेक हैं, यह हमारे चित्तमें चिन्ता औ बडी भय तथा आपद का हेतु है, कामदेवने कहा, हे प्रिये ! डर क्या है, विवेक से जो तुमको भय होती, सो केवल स्त्रीजाति का भीरु वाम स्वभावमात्र है, हे रामरम्भोरु ! हमारा कुसुमधनुष औ पञ्च-वाण जो वर्त्तमान हैं, तो देवता, दैत्य; दानव सुर, नर, मुनि, असुर जितने इस त्रैलोक्यमें हैं, किसकी सामर्थ्य जो हमारी आज्ञा उल्लं-घन कर, एक मुहूर्त्त भरभी वह धूर्त्त धीरज धर सकै. ऐसे पुरुषार्थी वीरके हमारे निकट रहते, जो तुमको वृथा भय औ चिन्ता यही परम आश्चर्य्य है.

भला, देखो तो हमारे बाणोंके प्रतापको कि स्वर्गीय विचारपति त्रिदशाधिपति जो महेन्द्र सोपरम तपस्वी मुनि गौतम की पतिव्रता पत्नी अहल्याके उपपति भये, औ ताराधिपति चन्द्रमा

नै देवगुरू वृहस्पति की स्त्री तारासे सम्भोग-कर, बुधनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजीने भी, आत्मकन्या संध्या के प्रति गमन किया, जितेन्द्रिय भोलानाथने भी, मेरे बाणका तेज न सहि सके दो दण्ड-तक व्याकुल रहे, फेर अति क्रोधवश हो, ती-सरा अग्निरूप ललाटनेत्र खोल, मेरी शरीर को भस्म किया परन्तु अन्तको जाय पार्व्वती को विवाहा, और महाप्रतापी रावणनेभी काम वश हो, निज वधू उर्व्वशी का करग्रहण किया; औ परम पुनीता रामपत्नी सीता को हरण कर, अपने कुलभरका नाश किया, और देव-ऋषि नारदजीभी, गन्धर्व्वनगरके बीच राज-कन्याके स्वयम्बरमे मोहित भये, तो श्रीभगवा-नने बचाया, देखो कि जिस पुरुषसे जो कर्म्म असाध्य औ शास्त्र विगर्हित, तथा सुननेसेभी विशेष सङ्कनीय है, सोभी घटित भया तो कहो, कि किस किस सज्जन सत्पुरुष महा-त्माको हमने असत पथमे नही चलाया, तो

फेर त्रिभुवनके जय करने मे हमको कहो क्या श्रम है और क्या वाकी रहा.

रति वोली कि स्वामी, आपने जो कहा सो सत्य और ऐसेही है; पर तौभी बलवान् सहायक शत्रु भी सदा शङ्कनीय होता, जिस हेतु मैने सुना है कि, इस विवेकके यम नियम आदि महावली आठ मन्त्री हैं. काम बोला, कि हे प्रिये! विवेकके आठ वडे पराक्रमी जो अमात्य हैं, ते सव तो हमारे सन्मुख होतेही कौन कहां भाग जाय, इसका कुछ ठीक नहीं.

सो सुनो कि, क्रोधके सामने अहिंसाधर्म्म क्या है, और हमारे सन्मुख ब्रह्मचर्य्य धर्म्म कहां है, और लोभके निकट होतेही सत्य क्या पदार्थ है, औ अचौर्य्य अप्रतिग्रह विचारे कौन हैं. और देखो यमनियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार ध्यान, धारणा औ समाधि ए सकल तो निर्व्विकार चित्तके अधीन औ साध्य हैं. इससे इन सव जडों की जड तो हमारे क्रोधादिकों के मध्यमेसे एकभी रहे अथवा प्रगट होय तो, अनायासही निर्मूल उखड जाय, फेर जो

तुम भय खाती हो सो किस कारण है.

देखो, त्रैलोक्यमे हमारे प्रधान शस्त्र स्त्रीजन तो यम नियम आदि की बाधा करनेवाली प्रसिद्ध है, इससे ए सब यमनियम आदि सर्व्वदाही हमारे आधीन जानो, जिस हेतुसे हास, विलास, परिहास, क्रीडा, व्रीडा, अर्द्धकटाक्ष, वीक्षण, विलोकन, भ्रूविलास, संभाषण केलि औ आलिङ्गन ए सब दूर रहैं. एक कामिनी का ध्यानमात्रभी मनमे विकार उत्पन्न करनेको समर्थ है. और विशेष करके तो हमारे महाराज महामोहके मन्त्री जो अधर्म्म, तिनकी आश्रयसे महाराज मोहके अति प्रिय अकृत्रिम मित्र जो मद, मान, मत्सर, दंभ, लोभ आदि हैं, तिनमे से एक एकके भी सन्मुख होने से, फेर सम, दम, विवेकादि विचारे कहां है.

रति ने निज कान्त कामदेव से पूछा कि, प्रियतम! मैंने सुना है कि, आपका औ विवेकादिकों का उत्पत्तिस्थान एक ही है, तब तो कामदेवने निज कान्ता रतिको उत्तर देते, वेदा-

न्तमतके अनुसार अपने वंशकी उत्पत्तिका सकल वृत्तान्त कहने को आरम्भ किया, कि हे प्रिये! श्रवण करो, हमारे औ विवेकादिकों के जनक अर्थात् पिता एकही हैं, किन्तु जननी कहे माता पृथक पृथक हैं, सो तुम नहीं जानती हो, इससे सुनो कि, प्रथम तो परमात्माके आसङ्गसे उनकी निज पत्नी मायामे मन ऐसा नाम त्रिभुवनमे विख्यात एक पुत्र उत्पन्न भया कि, जिससे इस त्रैलोक्य की उत्पत्ति भई है, और सुनो, तिस मनके दो पत्नी एकतो प्रवृत्ति औ दूसरी निवृत्ति है, तिन दोनोके वीच प्रवृत्तिसे उत्पन्न महामोह प्रधान एक कुल और निवृत्तिसे विवेक प्रधान द्वितीय कुल है, परन्तु उसी एक मनसे हमारे इन दोनो कुलकी उत्पत्ति भई, इसमे कुछ सन्देह नहीं है.

रतिने पूछा कि, प्रियतम! जो ए दोनो कुल एकही पितासे उत्पन्न हैं, तो फेर तुमारे वैमात्र भाईयों के वीचमे परस्पर ऐसा वैरभाव किस कारण से भया? कामदेवने उत्तर दिया कि, हे प्रिये! इस जगतमे किसी को होय,

क्या भाईयों की जो एक वस्तुमे अभिलाष सोई लाष शत्रुता का कारण है. इस वातको सव जानते औ लोकमे प्रसिद्व है. देखो इसी कारणसे कुरुवंशी औ पाण्डवों का इस पृथिवीके हेत, परस्पर असाधारण ऐसा अत्यन्त विरोध भया कि, जिससे उन दोनाके वंशका और उनके मित्र पक्षधारी राजावोंके भी वंशका ऐसा निर्मूलध्वंस निर्वंश वंशनाश भया कि, अब कोई पिण्डपानी देनेको भी वाकी न रहा. और दिति औ अदितिके उदरमे कश्यपसे प्रगट जो देवता औ दैत्य वैमात्र भाई; तिनसेभी कितनी वार वड़े वडे महायुद्व भये और विरोध आजतकभी चलाही जाता है.

तैसेही, मैंनेभी अपने पिताके स्वोपार्जित; इस त्रिभुवनके ऊपर अपना अधिकार कर सबको अपने आधीनमे रक्खा है. परन्तु विवेकादिकाभी किसी किसी स्थानमे अधिकार है कि नहीं हैं, ऐसा सुननेमे आता है, जो होय एक तो यह और दुसरा, लोकरीति संवर्त्तन औ प्रजाओंका सम्वर्द्धन इन दोनों हेतुवोंसे हम

पिताजीके अति प्रियपात्र पुत्र हैं. और वह दुष्ट विवेक प्रजोंका उच्छेद औ लोकमर्जाद भ्रष्ट करनेसे पिताका अप्रिय असत्पात्र कुपुत्र पुत्र हैं. सो एकतो लोकमे हमारा अधिकार औ दुसरे हम पर पिता की अधिक प्रीति, इन दोनो कारणां से वह पापिष्ठ विवेक मत्सरयुक्त हो, ईर्षाके मारे हमको औ पिताजी को भी नाश करनेका उद्योग कर रहा है.

यह वात सुन, रतिने धिक्कार है उनको ऐसा कह, दोनों करसे अपने कान मूद, वार वार छाति खूंद, जीभको दांतोसे दाव, अति विस्मित हो, पतिसे पूछा कि, प्रियतम! वह पापी विवेक इसी वैर से ऐसे महा पापकर्म्म करनेमे प्रवृत्त भया है. भला, तुमने भी अपने चित्तमे उसकी कोई उपायका चिन्तन किया है, कि नहीं; काम वोला कि, प्रिये! इस विषयके वीच कोई गुप्त वीजरूप हेतु है. रति वोली कि सो क्या निगूढ वीजभूत हेतु है और किस कारण से उसको हमसें गोपन करते हो, तो जाना कि, हमपर तुमारी तैसी प्रीति नहीं हैं

तब काम बोला कि प्रिये। तुमतो हमारा जीवन धन औ सर्व्वस्व हो, ऐसे वचन न बोलो कामको सपनेमे भी रतिसे विरह कबहै परन्तु तुम स्त्री मात्रसे भयशीला थोडी ही बातके सुननेसे भय खाय कांपने लगती हो, इस हेतुसे उस पापी के भयानक बडे दारुण कर्म तुमारे निकट निपट गोपन करनाहीं उचित है, तुम अपने चित्तमे और कुछ न आनो. यह सुनि रति अति सभय कम्पमान निज पति से बोली कि, नाथ ! सो क्या हैं क्या है, तब सदर्प कन्दर्प कहने लगा कि, भय कुछ नहीं, तुम काहेको इतना डरती हो. सुनो, वह केवल उस दुरात्मा हत-भागे अभागे निराशे की आशा मात्र ही जानो. और यह केवल जनरव मात्रही है कि हमारे इस कुलमे विद्यानाम कुलघातिनी राक्षसी एक कुमारी प्रगट होगी. इसके सुनते ही, रति अति कम्पित गाय गद्गद वचनसे बोली कि हाय हाय ! किस कारण हमारे इस कुलसे राक्षसी प्रगटैगी मेरा हृदय कांपता है, काम बोला कि, यह केवल जनश्रुति मात्र है.

इस बातको सत्य न मानो. रति बोली कि, भला वह जन्म लेकर कौन कर्म करेगी सो तो कहो.

तब काम बोला कि सुनो, प्रजापति ब्रह्मा जीकी यह आकाशवाणी है, कि सङ्ग रहित जो पुरुषरूप परमात्मा तिनकी प्रिया जो प्रकृति रूप माया, सो यद्यपि असङ्ग निज पुरुष से स्पर्शरहित है पर तौभी निकटवर्त्तिनी हो, समीपस्थ अरुणपुष्पके वर्ण से रक्तवर्ण मुकुरके समान पतिके प्रतिबिम्ब बीजरूपके बलसे मनरूप एक पुत्र को उसने प्रगट किया. देखो उसी मनसे प्रवृत्ति औ निवृत्ति मे महामोह औ विवेक ए दोनो कुल उपजे, इससे यह जगत मायिक औ विकार विशिष्ट है और ईश्वर जो परमात्मा सो माया रहित निर्व्विकार औ मायाके प्रेरक हैं अतएव जनकसंहितामे प्रकृति की वार्त्ता है, कि हम जो गुणवती भार्य्या औ हमारे स्वामी निर्गुण पुरुष, दोनों निर्ज्जन देश एकान्तमे वास करते परन्तु परस्पर अङ्गस्पर्श नहीं होता है. सोई महामोहादि औ विवेकादि दोनो कुलके बीच, विवेकसे तत्पत्नी उपनिषद देवीमे, विद्या

नाम एक कन्या औ प्रबोधचन्द्र नामापुत्र, इन दोनों का जन्म होगा. वही विद्यानाम कन्या, हमारे पिता मन औ वैमात्र भ्राता विवेक औ सहोदर भ्राता महामोहादि तथा जननी प्रवृत्ति औ निवृत्ति, इन सबको संहार करके भक्षण करेगी. जिस हेतु यह सकल प्रपञ्च अविद्यासे सञ्चित है; तो अविद्याकी विनाशिनी जो विद्या, तिसकी उत्पत्ति होनेहीं से अविद्या का नाश है तो सुतरां अविद्याके सन्तानकाभी नाश भया ही पडा है. देखो, हृदयमे ज्ञानके उदय होने से, ब्रह्मज्ञानियोंके, चित्तमे, यह प्रपञ्च कुछ भी नहीं रहता वे इस जगतको केवल ब्रह्ममय ही देखते है.

निज पति रतिपतिके मुखसे, ए सब बातें श्रवण कर, रति कहने लगी कि, मरी मरी हा प्राण गये ! हे प्रियतम ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो, ऐसेही कहती कहती कम्पमानहो निज पतिको आलिङ्गन कर, मौन हो रही. तब तो रोमांच भरी चंचलनैनी कामिनी रतिके आलिङ्गन सुखका अनुभव कर, औ भयसे कम्पित कलेवर

हेतुसे थर थराते, जो स्तनयुगल तिनसे वक्ष-स्थल निपीडित हो औ झनत्कारविशिष्ट मणि-मय आभूषणोंसे भूजित सुन्दर युगल बाहुलता से आवृत सोत्कण्ठित कण्ठप्रदेश हो, कामदेव रतिको भुजद्वयसे गाढ़ आलिङ्गन कर, ऊंचे स्वरसे कहने लगा, कि हां हां प्रिये ! भय क्या है ? अरे ! हमारे जीवन रहते किस प्रकार विद्या की उत्पत्ति होगी कि, जिससे इतना अनर्थ औ अमङ्गल हमारे कुलके लिये होगा.

रतिने पूछा, प्रिये ! उस विद्यानाम राक्षसी का जन्म, क्या तुमारे दुष्ट विपक्षों का संमत है, काम बोला कि, हां, उसमें शम दम प्रभृति सबकी संमति औ उद्योग है, विचार देखो कि आत्माही सत्य, और यह त्रैलोक्य मिथ्या, ऐसे ज्ञानके उदय होनेही से, उपनिषद् कहे वेदका ज्ञानकांड, तिसके अनुशीलन कहे अभ्यास के करने से विद्या उत्पन्न होती; तो शम दम आदि अर्थात् इन्द्रियोंके निग्रहादिकी अवश्यही सहा यता है. रतिने फेर पूछा कि तो शमदमादि सब आपकी संहारकारिणी विद्या की उत्पत्तिको

किस हेतुसे कल्याणकारी जानते हैं. कामने उत्तर दिया कि, हे प्रिये ! अपने कुलको क्षय करने मे प्रवृत्त हिताहित मतिरहित दुर्म्मति से वे पापात्मा आत्मकुलक्षय के विचार औ बोधसे रहित मदान्ध भये हैं.

और जो स्वाभाविक मलिनस्वभाव औ कुटिलभाव खलप्रकृति है, तिनका जन्म, केवल जनक जननी औ निजपरिवार तथा अपने भी विनाश का हेतु है ; देखो, जैसे मलिनस्वभाव जो धूम, सो वारिधरकी पदवी पाय, वारिधाराके द्वारा निजजनक जो अनल है, तिसका विनाश कर, पीछे आप भी नष्ट होता है. ऐसेही कामदेव कह रहा था कि, उसी समैं नेपथ्थ के वीचसें विवेक वोलउठा कि, आः ! अरे पापिष्ठ दुराता दुष्टस्वभाव ! किस हेतुसे हम सबको पापकारी औ दुरात्मा कहता है, अरे श्रवण कर, कि अविविविचार मूढ़ औ कार्य्य अकार्य्य के अजान तथा विवेकरहित कुपन्थगामी अहङ्कारी जो गुरू, तिसका भी परित्याग करना उचित औ हित है, ऐसी पुराणकी गाथा है और

पण्डितजन भी कहते हैं. अरे मूढ़! हमारे पिता जो मन, सो तुम सबसे आहत औ अहङ्कारके वशीभूत हो जगत्पति आत्माको भूलकर मोहपाससे दृढ़बद्ध भये हैं. कामदेव भयचक इधर उधर अवलोकन करके निज कान्ता रतिसे कहने लगा कि, प्रिये! देखो यह हमारे कुलसे ज्येष्ठ विवेक निज कान्ता मति सहित इस स्थानमे है, जैसे सघन हिमांधकारसे आहत निज कान्ता कान्ति सहित हिमकर अल्प प्रकाश पावता हो, और अनिवार्य्य जो विषयोंका अनुरागादि तिससे हतश्री औ मानरूप धनहानि प्रयुक्त निरादर पुरुषके समान अपमानसे दीनदुर्व्वल ऐसा देखपडता है, जो होय अब हमको इस अयशके स्थानमे अवस्थान कहे वास करना अनुचित है, यह विचार, रति औ रतिपतिने रङ्गस्थानसे प्रस्थान किया॥ यह विष्कुम्भ कहै.

तदनन्तर महाराज विवेक, निज पत्नी मतिको सङ्गकर आय, (रङ्गभूमिमें प्रवेशकरके किंचित्काल विलम्ब मौन अवलम्बन कर) निज

कान्ता मतिसे कहने लगे कि, प्रिये ! तुमने इस दुर्व्विनीत बालकके साटोप कहे गर्वीले वचन औ अहङ्कारभरी उक्ति युक्तियोंको श्रवण किया, जो हमको पापकारी औ दुराचारी कहता है, तब मति अति नम्रमति निज पति के प्रति बोली, हे स्वामी ! इस त्रिभुवनमे कौनक्या नहीं कहता इससे तुम अपने दोषपर दृष्टिकरो, देखो इस संसारमे निर्दोषवस्तुमे एक न एक दोषका आरोप करते तो इससे आपका कौन दोष है.

तब विवेकने कहा कि, हां प्रिये ! सो तो सत्य है, परन्तु देखो, यह सदर्प कन्दर्प औ अहंकार प्रधान मद मत्सर महामोह प्रभृतिने अनेक अनेक पासबन्धनों से चिदानन्द निरञ्जन जगत् प्रभु आत्माको बद्धकर, इस दीन मलीन दशाको प्राप्त किया है कि, जीव कहाय निर्जीव दारु योषित औ मर्कटके समान अनेक नाच नाचता औ नाना दुःख पावता है, ऐसे ऐसे निन्दित औ कुकर्मकर्म करके वे सब तो पुण्यकारी भये और वही पाशबन्धन औ पाप मोचन करनेके हेत यतन करते जो हम सब, सो पापकारी

औ दुराचारी हैं, यह क्या आश्चर्य्य की बात हैं. मतिने पूछा कि, हे प्रभो! जो परमेश्वर ज्ञान रूप सहज आनन्दमय सुन्दर निर्म्मल स्वभाव औ नित्य आत्मा तिनकी ज्योतिरूपशक्तिसे यह जगत प्रकाशित भया, ऐसा मैंने सुना है, तो किस प्रकारसे वे दुष्ट दुर्वृत्त तुच्छ कामादिकोंने तिनको बद्ध कर महामोह-सागरमे निक्षेप किया अर्थात् फेंका है.

विवेकने उत्तर दिया कि, प्रिये! श्रवण करो, यद्यपि शान्तिपथके अवलम्बी पुरुष धैर्य्य-शाली उत्साहयुक्त नीतिपर निर्म्मलअन्तःकरण धीर वीर औ सुबुद्धि हैं, तथापि कामिनीजनों के हाव भावसे वंचित हृदय हो, स्वाभाविक धैर्य्यको भी त्याग करते हैं. तब मतिने कहा कि, क्या सहस्र रश्मि सूर्य्यको अन्धकार कभी आच्छन्न कर सकता है, विवेकने उत्तर दिया कि, हां यह बात सत्य, औ विचारसिद्ध है. परन्तु जैसे वेश्याजन कपटकटाक्षादिके निक्षेप औ हावभावके द्वारा कामी पुरुषों को वंचना करती हैं, तैसेही, मायाभी असत्पदार्थ समूह

के दर्शन करानेसे, इस आत्माकी प्रतारणा करती हैं. देखो, यद्यपि विशुद्ध स्वच्छ फटिकमणिके समान निर्म्मल प्रकाशमान, इस आत्मप्रभा की कुछ न्यूनता नहीं होती ठीक है, पर तौभी इस अज्ञानमयी नीचस्वभाव मायाके अनिर्व्वचनीय विकारोंको प्राप्त हो, विकारवान्सा देखा जाता औ सङ्गदोषसे दूषित हो रहा है और यद्यपि मायाके संसर्गदोषसे आत्माके प्रकाशकी कुछ हानि नहीं भई तथापि वह माया इस आत्मा को वारवार चंचल तो करती ही है.

रतिने पूछा कि, किस कारणसे यह दुष्टचरिता माया, उदारचरित्र आत्माको छलना करती है, विवेकने उत्तर दिया कि, माया को आत्माकी प्रवंचना करनेमे जो प्रवृत्ति, तिसका कोई कारण या प्रयोजन नहीं है, परन्तु स्त्री पिशाचियों का यही स्वभाव है, कि पुरुषके सदय हृदयमे सहसा प्रवेशकर कौन कौन आचरण नहीं करती हैं देखो, कभी मोह, कभी सन्ताप, कभी विडम्बना, कभी भर्त्सना, कभी विषाद उत्पन्नावतीं, कभी रमण कराअती हैं. हां

मायाको आत्माके प्रवंचना करनेमे एक विशेष प्रयोजनभी सम्भव होता है कि, वह दुश्चरित्रा मायाने यह विचार किया कि, हम तो गतयौवना औ प्राचीना और आत्माभी विषयरससे विरक्त औ वृद्ध हैं, इससे आत्मतनय मनको आत्माके स्थानपर निवेश करावें तो भला है, यह मायाके मन की अभिप्राय जान, मायासुत जो मन सो आत्माका अत्यन्त निकटवर्त्ती है, इस हेतुसे अपने को आत्मस्वरूप प्राप्त सा मान नवद्वारगृह अर्थात् शरीर निर्माण कर के पीछे उस एक रस एकही आत्माको मानो, खण्ड खण्ड कर प्रत्येक नवद्वार-शरीरों का अधिष्टाता बनाय उसी आत्मामे कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभिमान भी जन्माबता है, जैसे जबाफूल निकटवर्त्ती हो फटिक मणिमुकुरमे अपने लोहित वर्णसे उसको रक्तवर्णके ऐसा जनाबता; तैसेही पापिष्ट मनके सन्निधानसे आत्मामे कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान होता अर्थात् हम कर्त्ता हम भोक्ता इत्यादि नाना अभिमान होते हैं, तदनन्तर स्वयं निर्मल निरभिमानी सर्वज्ञ

आत्मा अपने पुत्र मनका ज्येष्ठपुत्र जो अहंकार निजपौत्र तिसके आधीन औवशीभूत हो, यद्यपि विद्यावान् तथापि मानसिक नाना कल्पनोंका अनुभव करते अविद्यामयी निद्रासे अभिभूत हो, हम उत्पन्न पुत्र हैं हमारे ए जनक जननी औ यह स्त्री, यह कुल यह पुत्र, मित्र, शत्रु, धन, जन, सैन्य विद्या, बन्धु, बान्धव आदि अनेकविध स्वप्नका दर्शन करता है. मतिने पूछा स्वामि! तो दीर्घतर गाढ अविद्यामयी निद्रामे जडवत् अचेत पड़े भये आत्माको प्रबोध किस प्रकारसे होय सो कहिए, यह सुनते विवेकने लज्जासे किंचित् अधोमुख होकर मौनगहि रहिगये कुछ उत्तर न दिया, तौ तैसे लज्जा औ खेदभाव को प्राप्त निज पतिको दुःखित देख फेरभी मति बोली कि, प्रियतम! तुम किस कारण ऐसी बडी लज्जासे नीचे मुख कर मौनका अवलम्बन कर रहे. विवेकभी अति कुण्ठित भावसे कहने लगे कि, हे प्रिये; स्त्रीजनोंका हृदय बहुधा ईर्षायुक्त होता है, इससे हम अपने को अपराधीके समान जान शंकासे अधोमुख भये हैं,

अर्थात् हम उपनिषद् देवीके साथ सङ्गमसे प्रबोधरूप पुत्रको उत्पन्न कर, उसके द्वारा महा-मोहादिकों के विनाश करनेको समर्थ हो सकते हैं, परन्तु तुमारा भावी जो अभिमान औ सापत्न्य जन्य ईर्षा तिसकी भावना औ भय तथा आशंकासे अपने अपराध की शंका करते हैं. जिस हेतु स्वामीको जो सपत्नी सङ्गमकी अभिलाष सो मानिनी कामिनी जनोंको, अत्यन्त ही असह्य औ दुखका भवन है.

यह सुनि, मन मनसे गुनि, निज पति विवेक के प्रति मति बोली कि, हे प्राणनाथ ! और सब नारी तो स्वेच्छाचारी अथवा धर्म्म कर्म्मके उद्यममे प्रवृत्त स्वामीके मनकी अभिलाषके प्रतिकूल आचरण करती हैं, यह बात सत्य हैं, परन्तु हम तैसी स्त्री नहीं हैं. तब विवेक बोले कि भला, तुम जो ईर्षा आदि दोष छोड एक मुहूर्त्तमात्रभी धैर्यका अवलम्बन करो तो, चिरकाल विरहिणी औ वियोग की असूया कहे निन्दासे व्याकुल जो मानिनी, उपनिषद देवी तिसके साथ हमारा संगम होय, और उस

संगमसे हमारे जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इन तीन अवस्थोंके अभाव हेतुक प्रबोधचन्द्र रूप पुत्रकी उत्पत्ति हो सकती है, और विशेषसे तो इस काममे तुमारी दूसरी सपत्नी शान्ति आदिक भी अनुकूल हैं. मति बोली कि, हे नाथ; जो दृढ तर ग्रन्थिसे बन्धे हमारे कुलके प्रभु आत्माका बन्धन मोचन होय तो तुम उपनिषद देवीके साथ चिरकाल संग करो, इसमे हम कदापि असन्तुष्ट नहीं वरन हमारा हृदय परम सन्तुष्ट जानो. विवेक बोले कि, प्रिये ! जो तुम इस प्रकार प्रसन्न हो तो हमारा मनोभिलाष शीघ्रही पूर्ण होगा सो भी सत्य जानो.

जो जगतके आदि सर्व्वव्यापी नित्य अद्वितीय आत्मा, तिनको विषयानुरागादि रूप दृढ तर रज्जु बन्धनसे बद्धकरके भिन्न भिन्न रूप जन्म औ मरण स्वरूप नाना यातना औ दुख देते जो महामोहादि, तिनको विद्याके द्वारा यथाविधि प्राणान्तिक प्रायश्चित्त विधान करके फेर विद्याके द्वारा उसी आत्माको पुनर्वार ब्रह्मत्वप्राप्तिसे चिदानन्दरूप अवश्य हम करैंगे,

जो होय, अवतो हम उपनिषद्-देवीके साथ सङ्गमके निमित्त प्रथम इन्द्रियादिके वशीकरणार्थ शम दमादिको नियुक्तकरैं, यही कथोपकथन पूर्व्वक विवेक औ मतिने रङ्गस्थानसे प्रस्थान किया,

प्रथम अङ्क सम्पूर्ण॥

द्वितीय अङ्क।

विवेक का इस प्रकार अपने नाशके अर्थ उद्योग औ आत्म-अनहित वचन श्रवण कर, महामोहने देश काल पात्र विचार पूर्व्वक, तत्कार्य्यके अनुष्ठान करनेके निमित्त, दम्भादिकों को आज्ञा दिया कि, अब क्या देखते हो? शत्रु तो शिरके ऊपर आयकर प्राप्त भये, इससे तुम सब शीघ्र उनको निर्मूल करने को तयार होउ, तदनन्तर दम्भ तत्कालही रङ्गभूमिसे आयकर कहने लगा कि, अब हमको श्रीमान् महाराज महामोहने यह आज्ञा किया है कि, हे पुत्र! दम्भ! देखो हमारे

कुलको क्षय करने के हेत अमात्य सहित विवेकने प्रबोधचन्द्र प्रगट करने के अर्थ प्रतिज्ञाकर सकलतीर्थ औ शम दम आदिको प्रेरणा किया, इससे तुम कामादिकों के साथ मिल कर, उनके निराकरणके अर्थ प्रथम तो इस पृथिवीके मध्यमे प्रधान पुण्यक्षेत्र जो वाराणसी तहां जायकर ब्रह्मचारी गृही वाणप्रस्थ औ यती, इन चारों आश्रमियों के आश्रमोमे प्राप्त हो ; आश्रम धर्म्मका प्रतिबन्ध औ लोप करनेमे यत्न करो. तबतो हमने वर्त्तमान तावत् काशीनिवासीजनों को ऐसी दुर्दशा किया, सो श्रवण करो. कि, वे सब धूर्त्त हमारे वशीभूत अत्यन्त कामातुर हो, वाराणसी की वारनारी वृन्दोंके मन्दिरोंमे जाय जाय, सद्गन्धयुक्त सुन्दरी स्त्रियोंके अधर-मधुपानमे उन्मत्त मुग्ध मधुप हो, युवतियोंके पानावशिष्ट मद्यपानसे परमानन्द को प्राप्त, रति-महोत्सव रसके वश चन्द्रकिरणोज्ज्वला रजनीको यापनकर, फेर दिनको हम सर्व्वज्ञ औ चिरकालसे दीक्षित वंशपरम्परासे अग्निहोत्री तपस्वी औ ब्रह्मचारी

तथा ज्ञानी ऐसे कपटवचन रचनाके द्वारा जगत को वञ्चना करते हैं. तदनन्तर दम्भ दूरसे अहङ्कारको अवलोकन कर, वितर्क करता है, कि यह पथिक कौन है, जो भागीरथी पार हो कर वाराणसी को आवता है, ब्रह्मचारीवेश, मानो अहङ्कारसे भरा बलती अग्निके समान त्रैलोक्यको भय देता है, औ अपने उत्कर्ष प्रकाशके अर्थ वाक्जालके द्वारा त्रिभुवनको भर्त्सना औ उपहास करता आगमन करता है, इससे इसको इस प्रकार देख यह ज्ञान होता कि, यह बटु अवश्यही दक्षिण राढ़देशसे आवता होगा. भला इससे अब पितामह अहङ्कारके समाचार श्रवण करेंगे, ऐसेही कहते कहते दम्भने रङ्गभूमिसे प्रस्थान किया.

तदनन्तर अहङ्कार रङ्गप्रदेशमे प्रवेश कर कहने लगा कि, क्या आश्चर्य है, कि जगतके प्रायः सभी मनुष्य मूर्ख हैं, सो सुनो कि कोई प्रभाकर प्रकाशित मतको श्रवण करते नहीं औ भट्टमत जानते नहीं, न्यायदर्शनभी पढते

नहीं, बृहस्पति कृत मध्यमागमकी बात क्या जानैगे, सामुद्रक मतसे दृष्टिभी नहीं दिया औ मीमांसाशास्त्र कि जिससे सूक्ष्मपदार्थौं की मीमांसा कीयी जाय, उसका तो किञ्चित् अंश भी नहीं देखते, तो पशुतुल्य सकल मनुष्य कैसे निश्चिन्त हैं अर्थात् एक हमहीं निर्मल बुद्धि औ सकल शास्त्रके वेत्ता हैं. ऐसे काशीवासी सम्पूर्ण मनुष्यों को अवलोकन कर, कहने लगा कि, ए सब मनुष्य अर्थके उपार्जनसे व्याकुल स्वाध्यायमात्रके अध्ययनमे निरत अर्थात् वेदका स्वकपोल कल्पित अर्थके प्रकाशक, फेर दूसरी ओर गमनकर कहने लगा कि इन सबोंने केवल भिक्षाके निमित्त यतीका वेषधारण औ मस्तक मुण्डन कराया है, और पण्डिताभिमानी केवल वेदान्त शास्त्रको व्याकुल करते हैं. हंस करके फेर बोला कि, प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध जो सकल पदार्थ, तिसको विरुद्धार्थ वादी जो वेदान्त अर्थात् चाक्षुष वस्तुको मिथ्या कहनेवाला सो यदि शास्त्र है तौ बौद्ध विचारोंका कौन अपराध है इससे इनके साथ बोलने से

भी पाप लगता है. इतना कह, अन्यदिशामें किञ्चित् गमन कर बोला कि, देखो, यह शैव आदि न्यायमतानभिज्ञ पाषण्डमण्डली विराजमान है, इनके साथभी बात करने से, नर नरकगामी होते हैं. इससे इनका मुख देखना भी अनुचित जानो, पुनर्व्वार और ओर गमन कर बोला कि, क्या आश्चर्य है, कि इस तीर्थ से तपस्याके बहानेसे, धूर्त्त औ दाम्भिक मनुष्य भागीरथी-तीर-तरङ्ग-स्पर्शसे, शीतल शिलाश-कलोंपर, उत्तम आसन औ कुशासन डार, तिनके ऊपर कुशमुष्टिसे मंडितकर, महादंड कमंडलुसे वेष्टित वलयाकार जपमाला स्पृष्ट अङ्गुली भङ्गीके द्वारा केवल धनी पुरुषोंका सकल धन अपहरण करते हैं, फेर अन्यदिग गमनपूर्व्वक अक्षि निक्षेप कर बोला कि,ए सब जीविकामात्र निर्व्वाहके अर्थ यती, ब्रह्मचारी वैखानस, द्वैताद्वैतमार्गमें अव्यवस्थित चित्त वेश बनाके घूमते हैं, पुनः दिगन्तर गमन कर अनजानसा किञ्चित् दूरपर दम्भका आश्रम देख वितर्क कर कहने लगा कि, दोनो पासमें

कृष्णाजिन पेखनी होमदंड स्रुवा उलूखल मूसल और द्वारदेशमें फहराते, श्वेत पताका आदि से सुशोभित यह किसी महापुरुषका आश्रम प्रकाशमान होता है, अनुमान होता कि, कोई साग्निक गृही इस स्थानमें है कि देखो होमद्रव्यके धूमसे गगनमंडल श्यामवर्ण हो रहा है, तो तीन दिन हमको वास करना इस निवासमें योग्य है ऐसी चिन्तासे उस आश्रमके द्वारदेशसे प्रवेश करते अवलोकन कर विचार करने लगा कि, यह मनुष्य साक्षात् मूर्त्तिमान दम्भस्वरूप प्रकाशमान है कि, जिसहेतुसे इस का ललाट कपोल उरु औ अधर चिबुक बाहु वक्षःस्थल, जानु उरू कण्ठ, उदर, पृष्ठ ए सब अङ्ग गङ्गाकी मृत्तिकासे अनुलिप्त और शिखा-का अग्रभाग दोनों कर्ण कटिप्र औ दोनोहाथों में कुशांकुर विराजमान देखते हैं; भला जो होय, इसके निकट जाय, देखें तो यह शोच सन्मुखजाय नमस्कारकर कुशल प्रश्न पूछा, तो दम्भने हुङ्कार शब्द कर उसको वारन किया, इतने मे दम्भका कोई सेवक ब्रह्मचर्य्यरूप आय

कर उपस्थित भया, और उस ब्राह्मणसे बोला कि महाराज आप इस आश्रमके वाहरही रहिये, क्योंकि, विना पादप्रक्षालन किये इस पवित्र आश्रमसे प्रवेश करना अति अनुचित है. तब तो अहङ्कार अति कोप कर बोला कि, आः अरे क्या अब हम म्लेच्छदेशसे आये कि जिससे गृहस्थ लोग, वेदपाठी अतिथि अभ्यागत साधुजनोंका आगत स्वागत औ पाद प्रक्षालन आदि सत्कारसे पूजन तो नहीं करते, उलटा दूर दूर कर अपमान तो भलेंई करते हैं. यह सुन, दम्भजे भुजभङ्गी औ इसारेसे अहङ्कारका आश्वास किया तो उस ब्रह्मचारीने भी दंभकी मनोगत अभिप्राय जानकर कहने लगा कि, ए पूज्यपाद आश्रमी निवेदन पूर्व्वक आपसे यह कहते हैं; कि आप, दूरदेशसे आये हैं, इससे हम आपका कुलशील औ स्वभाव आदि नहीं जानते यथा (अज्ञात कुलशीलस्य वासो देयो न कर्हिचित्) यह सुन; अहङ्कार क्रोधकर बोला कि, आः! त्रिलोकमे प्रसिद्ध जो

इस तो हमारेभी कुलशीलकी परिचय देनी होयगी? भला तो श्रवण कर,

अनूपम राढदेशके मध्यसे भरिश्रेष्ठ नाम एक सर्व्व श्रेष्ठ ग्राम है, तिसमे सर्व्वजन मान्य हमारे पिता वास करते हैं; तिनके महाकुलीन अनेक पुत्र हैं, कि उनको इस संसारमे कौन नहीं जानते हैं, फेर तिनके बीच नययविन विचार आचार, धैर्य्य, माधुर्य्य औ शील औदार्य्य आदि सकलगुणोंसे परिपूर्ण हम, अपने सब भाईयोंकी अपेक्षा देश देशमे अधिक प्रसिद्ध औ मान्य हैं. तब दम्भने उस ब्रह्मचारी की ओर अवलोकन कर सङ्केत किया, कि तत् कालही वह जलपूर्ण ताम्रपात्र लायकर बोला कि, महाराज! आप इस जलसे पाद प्रक्षालन करिये, यह सुन अहङ्कार उसके करसे वह जलपात्र निज करमे लेकरके बोला कि, भला इससे क्या हानी है; लावो पाव धोय डारैं इतनी बात कहकर पाव धोय अहङ्कार जैसेही दंभके निकट चला कि, तैसेही दंभने निपट निठुरतासे अपने दांत कटकटाय उस

ब्रह्मचारीकी ओर टेढी आंख फेरा, तो वह इङ्गित औ आकारसे अपने प्रभूके मनकी बात जान इस अभ्यागत अहंकारसे कहने लगा कि, दूर रहो जी तुम कैसे निर्बुद्धि पुरुष हो, कि हम तुमको बार बार रावन करते और तुम एक नहीं सुनते, जबनतब प्रभूही के निकट को चलते हो, ऐसे निर्लज्ज कि देखते नहीं ज तुम्हारी पीठ औ सारी शरीरसे पसीना चुचुआय रहा है और वायुवेगसे उसकी बून्दे उड उड कर हमारे प्रभुके अङ्गसे सर्श करती हैं. अहंकार बोला कि, यह क्या आश्चर्य है कि, देखनेसें तो ये अति ब्रह्मण्य देव औ शान्तस्वभावसे लगते हैं, परन्तु सेवक इनका यह बटु ऐसी ऐसी कर्णकटु बातें बोलता है.

तब वह ब्रह्मचारी फेर बोला। कि आप नह जानते; हमारे स्वामी सामान्य नहीं हैं; ए विलक्षणही ब्रह्मण्यदेव हैं. सो सुनो कि साधारण मनुष्यों की तो क्या बात है बडे बड़े प्रबल भूपाल भी इनके पादपीठ वाले खराउंका स्पर्श न करके पादतलकी छायायुक्तभूमिके नि-

कट स्थानको अपनी मुकुट मणिकी किरणोंसे नीराजना कहे आरती उतारते हैं. अरे ! इस देशमे इसका अधिकार है. भला तो हम इस आसनपर बैठें कि, इतनेमे वह सेवक फेर बोला कि, आपका इसपर बैठना अयोग्य औ अनुचित है, क्योंकि इस आसन पर हमारे स्वामी छोड और कोई बैठनेके योग्य नहीं है.

तब अहंकार बोला कि, क्या ! क्या ! पापी ! राढ़ देशमे अति प्रसिद्ध शुद्धवंशमे जन्मे जो हम तिसके भी बैठने योग्य यह आसन नहीं है ? अरे मूर्ख ! श्रवण कर, कि हमने जैसे शुद्धवंश वेदपाठी ब्राह्मण की कन्याको विवाहा है. ऐसी हमारी माता भी शुद्धवंशकी कन्या नहीं है ; इस हेतु हम अपने पितासे भी अधिक कुलीन औ श्रेष्ठ हैं. और हमारा जो सारा है, तिसके मित्रके मामाकी कन्याको मिथ्या कलंक लगा था तो हमारी स्त्रीका भाई के साथ सम्बन्ध औ गमनागमन रहने के कारणसे हमने अपनी उस प्रियतमा स्त्रीको भी त्याग

कर दिया है, तो हमसे और अधिक उत्तम औ कुलीन कौन है रे?

तब तो दंभ क्रोधसे अधीर होकर आप ही कहने लगा कि, हां! आप ऐसेही शुद्ध औ सतोगुण मूर्त्ति उत्तम पुरुष हैं, कि, जैसा कहते हो, परन्तु हमारा वृत्तान्त आप नहीं जानते, हम जैसे पवित्र हैं, सो समाचार सुनो कि, एक समैं हम ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके घरको गये थे, तो ब्रह्माजी अपने को कृतार्थ औ धन्य मान उसी क्षणमें तुरतही देवऋषि नारदादि सहित निज-आसन छोड अलग उठ खड़े भये, और भांति भांतिसे अनेक विनय कर अपनी जांघको गोमय औ मृत्तिका लगाय गङ्गाजलसे मार्ज्जनकर कहे धोय अति शीघ्र बडे प्रेमसे हमको उसपर बैठाया 'अपनी शपथ औ तुमारी सौंह इसमें कुछ झूठ नहीं है' तो फेर हमसे पवित्र औ मान्य तथा श्रेष्ठ इस जगतमें और दूसरा कौन है.

दंभकी ऐसी ऐसी झूठी बनाउ बातें सुन, यह क्या आश्चर्य है कि, धूर्त्त दांभिक ब्राह्मणों

की ऐसी अत्युक्ति अथवा उनका स्वभावही ऐसा है, यह अपने मन मनमें चिन्ताकर, अहं-कार क्रोधकर बोला कि, आः ! अरे मूर्ख ! क्या मिथ्या अभिमानसे अपना अपमान करता है, रे ! श्रवण कर, इस जगत् में मेरे आगे इन्द्रको ब्रह्माही था को ? और मुनिजनोंकी उत्पत्ति ही था कहां से ; हमारे तपोबल को देख, कि, सैकरों ब्रह्मा औ इन्द्र तथा मुनिजनोंकी उत्पत्ति औ विनाश हमसे होता है ; तो ये सब ह-मारे निकट किस गिनती मे हैं. हम एकक्षण मात्रमें वैसे सैकरों ब्रह्मा औ इन्द्रादिकी सृष्टि स्थिति औ लय कर सकते हैं. यह सुन दम्भने परम आनन्दसे अवलोकन पूर्वक अपने मनमें चिन्तन करके जाना कि, अरे ! ए तो हमारे पूज्यपाद पितामह अहंकारजी हैं, यह निश्चय कर अति आदर औ प्रेमभावसे विनय वचन पूर्वक बोला कि, हे पितामह ! प्रणाम कर-ताहूं मैं लोभका पुत्र औ दम्भ मेरा नाम है.

यह सुन कर, अहङ्कार तत्काल बड़ी प्रीति औ पौत्रके स्नेहसे कातर हो कहने लगे कि,

अरे भ्राता! तू दंभ है, भला भला चिरञ्जीवी हो, मैंने तेरे को द्वापर युगके अन्तमें बालक देखा था, अब तो कलियुगमें तू युवा अवस्थाको प्राप्त भया है; इससे पहचाना नहीं और अब वृद्ध अवस्थाके कारणसे मेरा ज्ञान भी बदल गया है, अरे! तेरा पुत्र जो असत्य सो अच्छी तरहसे है? दम्भ बोला, हां पितामह, वह भी मेरे निकट ही है, उसके विना तो मैं क्षण-भरभी प्राणधारण नहीं कर सकता, तब अह-ङ्कारने फेर पूछा कि, तो क्या तेरे माता पिता लोभ औ तृष्णाभी इसी स्थानसे हैं, दम्भ बोला कि, हां पितामह! महाराज महामोहकी आज्ञाके अनुसार वेभी निकटही हैं, महा-राजने किसी कार्य्यके हेत, हम सबको प्रेरणा किया; इससे हम सब इकट्ठे भये हैं.

तब अहङ्कार बोला कि, हां हमनेभी सुना है कि, विवेकसे महामोहका अत्यन्त अहित औ विरोध है, इसीसे हम भी वह वृत्तान्त जाननेके हेतही इहां आये हैं; तो वह समाचार विशेषसे कहो कि क्या बात है. दम्भ

बोला कि मैने सुना है कि महाराज महामोह जी इन्द्रलोकसे काशीपुरीको आगमन करैंगे और ऐसा भी जनरव है कि, वे आयकर काशीको अपनी राजधानी करैंगे. तव अहङ्कारने दम्भसे पूछा कि, महामोहका इस प्रकार राजधानी वनाय वास करने का क्या प्रयोजन है, दम्भने उत्तर दिया कि कारण तो विवेकका निवारण बोध होता है, कि जिस हेतुसे यह काशी विद्या औ प्रबोधका प्रधान उत्पत्ति स्थान है औ काम क्रोधसे रहित ब्रह्ममय शिवपुरी है तो सुतरां इस स्थानसे मोहादिके चयकी आकांचा करके विवेक निरन्तर वास करता है, इसी कारण महामोहभी उसके कुलकी चय औ विवेकका स्वंशध्वंस करने की इच्छा से, इस वाराणसीमे निरन्तर वास करैंगे. फलतः महामोहका वास रहते विद्या औ प्रबोधकी उदयका कदाचित् सम्भव नहीं है.

यह सुन अहङ्कार सभय सशङ्कित हो दीन भावसे कहने लगा, कि इस प्रकार इस विषय का प्रतीकार कहे उपाय तो दुःसाध्य है,

क्योंकि इस वाराणसीके निवासी आत्मतत्व रहित अज्ञानी मनुष्योंके भी कानसे करुणा-सागर-भगवान महादेवजी अन्तकालमे भव-भय निस्तारक तारकब्रह्म महामन्त्र अथवा तत्वमसि महावाक्यका आप उपदेश करते हैं. तव दंभ बोला कि पितामह! यद्यपि यह वात सत्य है, परन्तु काम क्रोधसे अभिभूत कहे घेरे भये मनुष्योंको यह संभव नहीं होता, कारण यह है कि, जिनके हाथ पाव औ मन ए तीन संयत हैं अर्थात् असत् प्रतिग्रह कहे कुदानसे हाथ औ अगम्य गमनसे पाव तथा परधन, परस्त्री औ परनिन्दा लोभ आदिसे मन नि-वृत्त है, और जिसके विद्या तपस्या औ कीर्त्ति है अर्थात् तीर्थ औ देवतोंके महात्मका प्रका-शक शास्त्रका ज्ञान औ तीर्थमे नियम तथा समैसे विहित क्रियोंका अनुष्ठान कहे विधान-पूर्व्वक करना औ धार्म्मिकता रूपकी प्रसिद्धि है, सोई तीर्थफलको प्राप्त होते हैं और जि-नकी भावना विषयादि कुकर्म्ममे रहती, वे अपने किये कर्म्मका सौगुना फल भोगते हैं.

दंभ ऐसेही कहरहाहै कि, इतनेमे नेपथ्यके भीतरसे तुमुल कलकलाधुनि ही उठी और महामोहकी सेनाका कोई एक वीर शिविरके वाहर निकल आय कहने लगा, कि, एहो पुरवासी लोगो ! तुम सुनो और सावधान होउ, इस वाराणसीमे महाराज महामोह आगमन करते हैं; इससे तुम सब फटिक-शिलासे रचित वेदियोंको चन्दन लगावो और चौमुहानी राजमार्ग तथा गलियोंमे जलसेचन करो, वजार वनाओ, घरोंके वाहरी दरवाजे उज्वल करो और इन्द्रधनुके स्पर्धी आकाशके स्पर्शी पताका अंटारियोंपर फहराओ, यह सुन दंभ बोला कि, पितामह ! देखो महाराज महामोह अति निकटवर्त्ती भये हैं, इससे आप उनकी अगवानी कर आगम स्वास करिये, अहंकार बोला हां, इस समै यही उचित है, यह कह, अहंकार औ दंभ रङ्गभूमिसे जैसेही बाहर भये, कि तैसेही महामोहका कोई अग्रगामी आयकर उपस्थित भया, फेर क्षण एक त्रिलखसें महामोह सपरिवार चत्र चमर सु-

वर्णदण्ड राजसी ऐश्वर्य्यके अनुरूप त्रिभवके आय रङ्गभूमिमे प्रवेशकर ईषत् हास्यपर्व्वक निज मत प्रकाश करते भये, बोले.

देखो तो यह कैसा आश्चर्य्य है कि, अबुध निरंकुश जडबुद्धि औ प्रत्यक्षातिरिक्त कहे अदृश्य पदार्थकी कल्पना कर जगतके वञ्चक धूर्त्तजन कहते हैं, कि देहसे भिन्न एक आत्मा है सो देह त्यागके अनन्तर परकालसे स्वर्ग नरकादि-रूप फलभोग करता है, तो उनकी यह आशा औ कथन ऐसेही जानो कि जैसे आकाश वृक्षके बड़े बडे फूलोंसे स्वादुयुक्त मधुर फल होंगे जो बंध्यापुत्र गूंगेके उपदेशसे शश-विषाणके लाभतुल्य सो हम भोगकरेंगे अर्थात् आकाश वृक्ष अलीक तो उसका पुष्पभी मिथ्या और फलभी झूठ यह प्रत्यक्षसे भिन्नपदार्थ कल्पनाके द्वारा मिथ्या वचनकी रचना करते हैं, क्या इनका दमन करनेवाला कोई नहीं है? तिसपर आजकलके धूर्त्त पौराणिक औ दार्शनिक कहे शास्त्रीलोग स्वकीय कपोल कल्पित अप्रत्यक्ष कृत्रिम विषयके छलसे लोभ दिखाय,

इस जगतको भलीभांतिसे ठगते हुवे, अपनी वडाई औ उत्कर्षका प्रकाश करते हैं.

देखो, जो वस्तु नहीं सोई तो सत्य है और जो सत्य औ प्रत्यक्ष है सो नहीं, ऐसी बातें जो कहते तिनको अज्ञानी औ वाचाल मनुष्य आस्तीक कहते औ प्रशंसा करते हैं, और आंख देखो वस्तुके माननेवाले सत्यवादी जो हम लोग, तिनको नास्तीक कहते औ निन्दा करते हैं,परन्तु हम असत् वस्तुकी झूठी कल्पना न करके, सत्य सत् वस्तुहीका उपदेश करते हैं; ओः होः भला तुमहीं लोग, अपने मनमें विचार करो कि जैसे दुग्ध खटाईके संयोगसे परिणाम होकर दही होता, तैसेही पृथिवी आदि चारोभूतोंके परस्पर संयोगसे आपसे आप चैतन्यरूप होती,जो देह तिससे भिन्न एक और आत्मा है, यह कोई क्या कभी देखा है कि; जो कहते हो, देहसे भिन्न आत्मा है, और जैसे लोह चुम्बक संयोगसे चलनादि चेतन व्यवहार देख पडता, तैसे भूत संयोगसे अद्भुत चेतनता भी प्रगट होती है, और जो

कहो कि, सोई चैतन्य आत्मा दिव्यज्ञानका कारण भिन्नही देख पडता है; तो जीवत शरीरमे आत्माको तुम काहे नहीं देखने पावते हो, और जो कहो कि, जैसे वायु गन्ध औ रस ये सत्य हैं, परन्तु देखनेमे नहीं आवते तो हमारीही वात आई कि इन्द्रियोंके द्वारा प्रत्यक्षही हैं; और जो कहो कि, कार्य्य के द्वारा अनुमान होता, तो अनुमानका क्या ठीक, हम यही अनुमान करते कि, भूतसंयोगसे चेतन-शक्ति प्रगट होती है. जो होय, इसी प्रकारसे आत्मवादी आस्तीकजन केवल जगतही को नहीं वञ्चना करते, वे आपभी वञ्चित होते हैं. देखो, मुख, नाक, हाथ, पांव, हाड, चाम, रुधिर, मांस आदि जो कुछ है, ब्राह्मण औ शूद्रकी शरीरमे एकसमान है, कुछभी भिन्न नहीं है, तो फेर यह ब्राह्मण औ यह शूद्र ऐसा वर्णविचार केवल उन्मत्त अज्ञ पुरुषोंका अनाचारमात्र है, और यह परस्त्री, यह परधन, ऐसा भेदभाव हम कदापि नहीं रखते और क्या हिंसा, क्या परदार गमन, औ क्या

परधन हरण अभिलाषके अनुसार इन सब कर्म्मोंने हम कभी कुछभी विचार नहीं करते, जो इच्छा सोई कर्म्म कर सुखी रहते हैं. और यह कर्त्तव्य है, यह करने योग नहीं, ऐसे ऐसे विचारोंसे व्याकुल पुरुषार्थ--हीन विचारे आस्तीन लोग अनर्थकी शङ्कासे आकुल होय अपने मनको मार कर केवल शासति सहते हैं. इतना कहकर, क्षण एक मौनका अवलम्बन कर महामोह फेर कहने लगा कि, बौद्धशास्त्रही उत्तम औ सब प्रकारसे श्रेष्ठ है; कि, जिसमे प्रत्यक्षही प्रमाण प्रमाण है, और जिससे अर्थ औ काम यही दो परम पुरुषार्थ हैं; तथा पृथिवी वायु अप तेज एइ चार भूतों के संयोगसे चैतन्यरूप देह उत्पन्न होती है, अर्थात् देहसे भिन्न और कोई आत्मा नहीं; देहही आत्मा और इस लोकको छोड दूसरा कहीं परलोक नहीं है, तथा मृत्युही मुक्ति है, अतएव हमारी अभिप्रायके जाननेवाले देवगुरु बृहस्पति जीने पूर्व्वहीं यह शास्त्र बनाय चार्वाकके हस्तमे समर्पण किया. तिस पीछे,

चार्वाकने शिष्य प्रशिष्यके द्वारा इस पृथिवी पर चहुं ओर बहुत विस्तारसे प्रकाश किया है.

मोहके ऐसे वचन सुन, शिष्य समेत चार्वाक भी रङ्गभूमिमे प्रवेश कर, निज शिष्यको सम्बो-धन कर कहने लगा, कि, हे तात! तुम यह जानो कि, अर्थशास्त्रही प्रधान विद्या औ इतिहासभी उसीके अन्तर्गत हैं और वेदा-दिक केवल धूर्त्तजनोंका प्रलाप मात्र है. देखो, कर्त्ता जो यजमान औ क्रिया जो यागवा कर्म्म, तथा द्रव्य जो आहुतिके अर्थ नाना प्रकार शाकल्य, इन सबके नाश होने परभी जो यज्ञ-कारी यजमान पुरुषको स्वर्ग प्राप्त होय तो वनकी दावानलसे दग्धवृक्षोंमेभी फल क्यों नहीं होते, तो जैसे दग्धवृक्षोंमे पुष्प औ फल अलीक कहे मिथ्या तैसेही यजमान की स्वर्गप्राप्ति भी अलीक है, और आश्चर्य जो देखो कि, मरेभये मनुष्य जो श्राद्ध औ तर्पणसे तृप्त होंय तो बुझे भये दीपककी शिखा तेल देनेसे क्यों नहीं बल कर बढ उठती है? तो जैसे तेल देनेसे दीप नहीं जलता, तैसे मृतपुरुष भी श्राद्ध औ तर्पण

से कभी तृप्त नहीं होते हैं, और जो कहो कि वे मृतक पितर हो पितृलोकमें पावते हैं, तो प्रथम यह लोकही झूठ कदाचित् उन लोगोंही के मतके अनुसार विचार कर देखो, कि, क्या सकल मनुष्योंके पुरुषे, पितरलोकको जाते फेर उनके ग्रन्थमें लिखे अनुसार स्वर्ग नरक औ चौरासी कौन भोगते हैं; और जो कहो कि, जहां रहते तहांई पिण्ड पानी पावते तो आज तक किसीने पिण्डपानी पाया अथवा किसी जीवको खाते पीते देखा है तो उनके इस गडवडाध्यायका कहां लों विचार करैं? झूठभी कभी सत्य हो सकता है.

तब शिष्यने पूछा कि, गुरूजी! जो केवल अभिलषित वस्तुका भोगही परमार्थ है, तो फेर किस कारणसे तीर्थवासी मनुष्य संसारी सुख समूहके भोगसे विमुख होय नीरस तप व्रत आदि कठिनतर कठोर दुख सहि शरीरको दुर्ब्बल औ चीण करते हैं. चार्वाकने उत्तर दिया कि, वञ्चकोंकी नीरस कठोर कर्कश रस-नासे विरचित वागडम्बर पुराणोंके द्वारा छली

निर्बुद्धि पण्डितजन, मूर्ख विचारों को सुनाय सुनाय औ मिथ्या आशामोदक का लोभ देखाय देखाय ठगते हैं ; जैसे कोई वैद्य बालकको लाड़ू देनेका धोखा दे कडुई औषध पान कराय देता है, भला तुमही अपने मनमे विचार कर देखो कि, छोटी छोटी प्रस्वेद बून्दोंसे सुन्दर सुशोभित भुजलता युगल मूलके निकटवर्त्ती उन्नत पीन-पयोधर-शालिनी वारविलासिनी ; औ चन्द्र प्रकाशयुत श्वेतयामिनीके समय नवीना कामिनीयोंके प्रेमरससे गीले औ ढीले नाना मनोरथ भरे प्रफुल्ल मनसे उनका मनोहर आलिङ्गन औ भ्रूविलास सहित खञ्जनसे रङ्गराते नेत्र कटाक्षोंकी परम्परासे, परमानन्द का अनुभव तथा मधुर मधुर अनेक रचना विरचित वचनामृत विशिष्ट अधरामृत पान, ये सब उन बिचारे भिक्षा औ उपास व्रत सूर्य्योपस्थानसे सूखी दग्धदेह दुर्बुद्धि तीर्थवासियोंको कहां प्राप्त हैं ? अर्थात् युवतीजनोंके आलिङ्गनमें क्या सुख और तपस्यामें क्या दुख है, यह निर्बुद्धि औ दुर्बुद्धि जनोंका जाना नहीं

है; इसीसे उन कुमति दुष्ट पण्डितोंसे वञ्चित चित्तवृत्ति होय, विचारे दुर्भग मनुष्य वैसी कामिनीयोंका कमनीय प्रत्यक्ष सुख देनेवाले आलिङ्गनको तिलाञ्जली देकर, अप्रत्यक्ष मिथ्या सुखरूप अलीक स्वर्गादिकी झूठी प्रत्याशामे अनेक कलेश देनेवाली तपस्या करनेसे केवल अपनी उत्तम शरीरको सुखावते औ दुख देते अन्तको रोवते पछताते हैं.

फेर शिष्य बोला कि, गुरूजी! तीर्थवासी मनुष्य परस्पर ऐसी वातचीत करते हैं कि, यह संसारो सुख दुखसे मिला भया हैं, इस हेतुसे सर्व्वथा त्याग करने योग है. चार्वाक हंसकर कहने लगा कि, हां अज्ञानियोंका ऐसेही विचार हैं, परन्तु देखो वूसीलपेटे हुए चाउरको कौन छोडते है? तैसेही कुछ दुख मिला भया सुखभी बुद्धिलोग नहीं छोडते हैं. इस वीचमें महाराज महामोह चार्वाकके मुखसे अपने मत औ मनभावती बातें सुन, कहने लगे कि, अहाः धन्य हो भावो चिरजीव रहो, अनेक दिन पीछे ये अमृत तुल्य वचनोंके श्रवणसे हमारे श्रवण

परितृप्त औ शीतल भये, फेर कुछ देर चार्वाक की ओर देख,महामोह बोले कि एहो ! ये तो हमारे प्रियतम सुहृद मित्र चार्वाक जी हैं.

चार्वाक भी अति आदरसे उनकी ओर एक टक देख, बोला कि, श्रोः होः ! ये तो महाराज महामोहजी हैं,भला भले आये अब हम इनके निकट गमन करैं. ऐसे शोच विचार उनके निकट जायकर बोला कि, महाराजकी जय होय ! मैं धर्म्मलाभ नाम चार्वाक, आप को प्रणाम करता हूं, महामोह बोले कि, अहो मित्र चार्वाक ! तुम कुशल चेमसे आये; आओ इस आसन पर बैठो; चार्वाकभी उस राजनिर्दिष्ट उत्तम कुशासनपर उपविष्ट हो बोला कि, राजन् आपको कलीने अष्टाङ्ग प्रणाम कहा है, मोहने पूछा कि कहो, तो कलीका निर्व्विघ्न सर्व्वाङ्ग कुशल मङ्गल है. चार्वाकने उत्तर दिया कि, हां महाराज ! आपके श्रीमान चरणकमलोंके प्रसादसे उनको सर्व्वथाही मङ्गलहैं; और जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म रहा, सो सब संपूर्ण कर चुके अब हम आपके चरणकमल अवलोकन

करनेकी इच्छा करते हैं; यह संदेशा कहा है, सो आपकी आज्ञाके अनुसार शत्रुवोंको नाश कर, प्रभुकी आज्ञा पूरी होनेसे उत्साह पूर्व्वक दर्शन की अभिलाष का कुतूहली कली शीघ्रहीं आय, महाराजके युगल चरणकमल को प्रणाम करैंगे. फेर मोहने पूछा कि, भला कहो तो, वहां कहां लों काम सिद्ध भया है. चार्वाक बोला कि, महाराज! वहांके सकल धर्म्मशील मनुष्य आजकल वेद विरुद्ध कुमार्ग गामी होय, मनमानी चेष्टा करते औ कुमार्ग से चल रहे हैं, परन्तु उसका कारण न कली है, न मैं हूं, फेर जो कार्य्य सिद्ध भया सो केवल आपहीका प्रताप है, और वैसेही उत्तर औ पश्चिमदेश-वासी सकल मनुष्यभी वेदकी मर्याद छोड बैठे तो, शम दम आदिकों की बात का क्या प्रसङ्ग है, वाको और और देशोंसे वेद औ विद्या केवल जीविका का हेतुही हो रही है; जैसा संहितासे लिखा है कि, (अग्निहोत्रं त्रयोवेदा स्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम् बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः ?)

दूसरे, अब आप कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमे विद्या की चर्चा औ प्रबोधकी उदय स्वपनेमे भी शङ्का न करना, यह सुन मोह परम सन्तुष्ट हो, धन्यवाद दिया और कहा कि, तो कार्य्य अच्छी प्रकारसे सिद्ध हो चुका कि, जिससे प्रधान२ बडे२ तीर्थोमे भी साधुजन वेद विरुद्ध आचार व्यवहार करने लगे, चार्वाक बोला कि, हां महाराज! सो तो भया है, परन्तु, एक और बडी अमङ्गल वार्त्ता है, जो आज्ञा होय तो प्रकाश करैं, कुछ मलिन मुख हो, मोह बोले कि, सो क्या? अमङ्गल बात हैं, बोलो न काहे; तब चार्वाक कहने लगा कि,

राजन्! विष्णुभक्ति नाम महा-प्रभाव-शालिनी एक योगिनी है, तो यद्यपि कलिके प्रतापसे सर्व्वत उसका प्रचार नहीं है, तौभी उसके आश्रय लेनेवाले मनुष्योंकी ओर हम सब देखभी नहीं सकते हैं, तब मोह अतिमात्र भययुक्त हो चिन्ता करने लगे कि, विष्णुभक्ति महा प्रभावा, हमारी परम शत्रु है, फेर उसका विनाश होना अति असाध्य औ दुर्घट है, मनमे

तो ऐसी चिन्ताथी परन्तु उपर के मनसे चार्वाक को साहस देकर कहा कि, भला, उससे क्या डर है ? उसके परम शत्रु काम क्रोधादिकों के रहते कभी किसी स्थानसे विष्णु भक्तिकी उदय क्या हो सकती है. चार्वाक बोला कि, हां ! सो तो सत्य है, काम क्रोध रहते भक्तिका सञ्चार कहां ; परन्तु नीति ऐसी है कि, जो अपना भला चाहै तो, एक छोटे भी शत्रुके रहते उससे सदा शङ्कित औ सावधान होके रहै, क्योंकि, छोटा वैरीभी काल पाय, प्रबल हो, मर्म्मकी वेदना देनेको समर्थ होता है. जैसे कण्टक अति छोटा अल्पशक्ति है, परन्तु पाद विद्व हो चरणको पीडा औ खरकतो कर्त्ताहीहै. यह सुन महामोह बोले कि, अरे ! कौन कहां है रे ; कि इतनेमे असत्संग नाम द्वारपाल शीघ्र आय उपस्थित हो, बोला महाराज क्या आज्ञा है. तब मोहने कहा कि अरे असत्-संग ! तूं, शीघ्र जाय काम क्रोध लोभ मद मान मत्सर आदि सबको कहो कि जिस प्रकार विष्णु भक्तिका समूल विनाश होय तैसो उद्यम

सब मिलकर शीघ्रही करैं, असत्संगने राज आज्ञा अंगीकार कर गमन किया कि, इसी बीचमे दम्भ आदिका पठाया पत्र लिये एक दूत आय रंगभूमिमे प्रवेश कर बोला कि, ओहे हम उत्कलदेशसे आये हैं उस देशमे समुद्र-तीर पुरुषोत्तमक्षेत्र नाम जो जगन्नाथपुरी प्रसिद्ध तीर्थस्थान है वहांसे दम्भ औ अहङ्कारने हमको महाराजके निकट पठाया है यह कह इधर उधर देख कर कहने लगा कि, अहो यह तो वांराणसी राजधानी है, इतना कह पुरीमे प्रवेश कर देखा तो महाराज चार्वाकके साथ कुछ मन्त्र कर रहे हैं, यह देख दूतने अपने मनमे विचारा कि, इसी समै हम निकट जाय यह ठहराय सन्मुख जाय, करजोर महाराजकी जय बोलकर बोला कि, महाराज; इस पत्रको देखिये. महाराजने पत्रले पूछा कि, तुम कौन हो और कहांसे आये, दूत बोला, कि हम तो श्रीजगन्नाथपुरीसे आये, महाराजने जाना कि कोई मंगलकर्म सिद्ध भया होगा, इससे चार्वाकको किसी वहाने विदा कर, उस

पत्रको पढ़ाया, तो पत्रमे यही लिखा था कि काशीपुरी राजधानीमे महाराजका राज्यशासन बढ़ै, आगे श्रीमहाराज महामोहजी के चरणकमल युगलके निकट श्रीचित्तसे निपट अधीनजन दम्भ औ अहङ्कार, साष्टांग प्रणाम पूर्व्वक यह निवेदन करते हैं कि, महाराजके प्रबल प्रतापसे इन दासोंका सकल मंगल जानिये. और असमञ्जस एक एही है शान्तिदेवी निज जननी श्रद्धाकी अनुकूलतासे विवेककी दूती होय, उपनिषद देवीको विवेकके साथ मिलनेके हेत निरन्तर समझाय बुझाय रही है, और यहभी बोध होता कि सकाम सकल कामोंको निःकाम करनेके निमित्त वैराग्यादि मनुष्योंको मन्त्रणा देते रहते हैं, क्योंकि निष्काम कर्म्म मोक्षका कारण औ साधनहैं, और किसी किसी स्थानमे निःकाम कर्म्मके गुप्त अनुष्ठानका प्रचारभी देखते हैं, ए सब समाचार जान, महाराजके चरणोंको निवेदन औ प्रणाम किया इति. महामोह यह श्रवण करते ही अतिमात्र क्रोधपूर्व्वक कहने लगे, आ

ये मूर्खलोग काहेको शान्तिसे ऐसी भय करते देखो, शान्तिकी भय केवल भ्रान्ति मात्र हैं, क्योंकि, कामादि प्रबल रिपुवोंके रहते, किस प्रकारसे शान्ति उत्पन्न होगी, अरे ! देखो, ब्रह्माजी जगत्के कर्त्ता निरन्तर व्यग्रचित्त बने रहते हैं, और विष्णु भगवान लक्ष्मीजीके कपोल प्रदेशमें, झूमते जो मकराकार अलङ्कार कुण्डलोंके चिह्नसे युक्त वक्षस्थलके ऊपर, प्रेमरस सरस भारसे आलस भरी कमलाको शयन कराय, आप क्षीरसमुद्रमें चैनसे शयन कर रहे हैं, और योगीराज शिवजी भी, दुर्गाजीके भुजलतोंसे लपेटे भये, आलिङ्गनसे उत्पन्न जो आनन्द, तिसमें निमग्न मानो जड़ता अवस्थाको प्राप्त भये हैं; और भोलानाथने भांग धतूर खाय विषपान कर घूमते लाल लालनेत्र उन्मत्त हो, दक्ष प्रजापतिकी यज्ञका विध्वंस किया है, तो दूसरे विचारे सामान्य मनुष्योंके चञ्चल चित्तमें शान्तिका सम्भव कहां हैं ? यथा,

शम्भुस्वयम्भु हरयोहरिणे क्षणानां,

येनाऽक्रियन्त शततं गृहकर्म्मदासाः

वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय,
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय

तिसके अनन्तर महामोहने उस दूतके प्रति कहा, कि वह निस्काम कर्म्म जैसा अनहितकारी है, सो सब भेद हमने जाना, इससे अब तुम कामके निकट शीघ्र जाय हमारा यह सन्देशा कहो, कि, एक मुहूर्त्तमात्र भी दया किम्बा क्षमा अथवा विश्वास न करके, उस निःकाम कर्म्मको दृढ़ बन्धनसे बांधकर हमारे निकट शीघ्र आनै. दूत तो आज्ञा शिर धर, सत्वर कामके निकट को चला, और महामोह कहने लगे, कि शान्तिकी उन्नति तथा वृद्धिका प्रसङ्ग तो किसी अंगसे संगत नहीं हो सकता है, जो कहो, कि किसी न किसी प्रकारसे वृद्धिकी सम्भावना हो सकती तौभी दूसरी कोई उपाय ढूंढनेका कुछ प्रयोजन नहीं है, क्रोध औ लोभके द्वाराही उसका प्रतीकार हो सकता है, इतना कह, मोह दरवाजे की ओर देख बोले, कि अरे कौन कहां है रे? इनके वचन सुनतेही, द्वारपाल स्वामीके समीप

आय हाथजोड खडा भया, मोहने आज्ञा किया, अरे क्रोध औ लोभको बुलओ, वह आज्ञा श्रवण करते ही क्रोध औ लोभ आय दोनो प्रभुके निकट उपस्थित होय, प्रथम क्रोधने निवेदन किया कि,

महाराज! शान्ति श्रद्धा विष्णुभक्ति आदि आपके विपक्ष जो आचरण करती हैं सो मैने सुना है, यह कह हंसकर वोला कि, क्या चिन्ता है; महाराज मेरे विद्यमान रहते शान्ति औ श्रद्धा तथा विष्णुभक्तिका चेष्टितकर्म धीरजके विना कहो कैसे सफल हो सकेगा, अर्थात् क्रोध रहते धीरजका अत्यन्त ही अभाव है, तो फेर शान्ति श्रद्धादिका प्रगट होना परम दुर्घट है, हे राजन्! आपकी महिमाके सहायके विनाहीं हम एक अकेले त्रिभुवनको अन्ध औ वधिर करैं और धीरको अधीर सचेतको अचेत कि, जिससे बुद्धिमान मनुष्यभी कार्य्य अकार्य्यको भूल योग्य अयोग्य विचार रहित हो हितवचनोंका श्रवण न करके मन

हित कर्म्मसे प्रवृत्तहो, पढे सुने नीति औ धर्म्म के ग्रन्थोंके स्मरणको एक वारगी भूल जांय.

इसी अवसरमे लोभभी अपना पराक्रम औ प्रभाव प्रकाश करते बोला कि, एहो! सुनो सुनो, मेरे आधीन लोभग्रस्त सकल मनुष्य औ देव दानवादि अपने मनोरथ औ आशारूप अपार सागरके पारको किसी प्रकारसे नहीं प्राप्तहो सकते तो शान्ति आदिका होना भ्रान्ति मात्र है. हे मित्र क्रोध! तुम देखो कि इस संसारके वीच, ये हमारे धन जन घर वार पुत्र पत्नी हाथी घोड़े हैं, और भी थोड दिन पीछे मिलैंगे, इस चिन्तामे दिन रात मनुष्यों का मन लोभसे घेरा क्षणभरभी थिर नहीं है तो, शान्ति होने की बात ही कहो क्या है.

फेर लोभसे क्रोध कहने लगा कि, मित्र! तुम यद्यपि हमारी सामर्थ्यको जानते हो. पर तोभी हम कुछ कहते हैं; सो सुनो कि, देखो देवराज इन्द्रने मेरे वश हो वृत्रासुरका वध किया, और पञ्चानन महादेवजीने भी ब्रह्माजी को पञ्चमुख देख, अपनी समता न सहि सके

तो मेरे वश हो उनका पांचवां मस्तक छेदन किया. और विष्णु भगवानने भी मेरे वश हो, हिरण्यकशिपुको संहार किया, और विश्वामित्र मुनिने वशिष्टके एकसौ सन्तान नाश किया, तो दूसरे विचारे किस गिनती मे हैं. ऐसी वातें करता भया क्रोध, लोभका करग्रहण करके फेर कहने लगा कि, सुनो और अधिक क्या कहैं ? देखो विद्या विनय औ कीर्त्तिसें सम्पन्न, तथा सदाचारसे निर्म्मल ऐसे वंशमे उत्पन्न जो मनुष्य उनकोभी हम एक क्षणमात्रमें ध्वंस कर सकते हैं. यह सुन, लोभ नेपथ्यकी ओर देख, निज पत्नी तृष्णाको आह्वानकर कहने लगा कि, हे प्रिये ! तृष्णा तुम शीघ्र आगमन कर, मेरी इस नयन तृष्णाको दूर करो, तृष्णा एकतो स्वभाव हीसे स्थूल शरीर कहे मोटी दूसरे निज पति लोभकी प्रणयप्रीति औ निरन्तर अनुरागके सरस रसभारसे भरी अधिक भारी वह लोभ की नारी तृष्णा मन्दगमन करती रङ्गभूमिमें आय, उंचे नयन कर प्रणय रससे सींचे मधुर वचन बोली कि, प्रियतम ; यह मैं आई क्या

कुछ दुखतो नहीं भया जो आपने ऐसे प्रेमभाव से आहान किया, अब आज्ञा करिये. लोभने कहा कि प्यारी; जो तुम प्रसन्न होय अपने सकल अंगोंको स्थूल करो औ उदर बढावो तो लोभकी आशारूप रसीसे बन्धे निरन्तर नई नई लाभकी चिन्तासे व्याकुल मन मनुष्योंको त्रैलोक्यका धन ऐश्वर्य्य औ विभव लाभ होने से भी, उनके मनमे कदाचित् किसी प्रकारसे शान्तिके होनेका सम्भव न हो सके.

तृष्णा बोली नाथ! मै स्थिर स्थूल आशारूप यौवना हूं, इसीसे जगतभर मूढ हो रहा है और जितनी मेरी शरीर है, इसीको कोटि न ब्रह्मा डसे भी तृप्ति नहीं होती तो आप किस बातकी चिन्ता औ भावना करते हैं; परन्तु तौ भी आपकी आज्ञानुसार उस काममे मै सावधान औ सदा मन दिये रहूंगी.

इसी समै क्रोधनेभी निज कान्ता हिंसाको बुलाया तो वह रङ्गभूमिमे आय. हंसकर कहने लगी कि स्वामी मै तो निरन्तर आपकी अङ्गसंगिनी हूं और पतिके बिना यह अधीन

दासी हिंसा एकक्षणभरभी क्या प्राणधारण कर सकती है, क्रोध बोला कि, प्रिये ! हम जौलों तुम्हारे साथ सहवास करते हैं, तौलों माता, पिता, भगिनी, भ्राता, इष्ट मित्र औ गुरूकेभी बधको अति तुच्छ एक सहज काम जानते हैं, देखो, माता पिशाची औ पिता प्रेत तुल्य भाई मसा मित्र मेषके समान औ बकध्यानी गुरू गोवरगनेश वञ्चकके प्रमाण है, तो इन सबोंका बध करनाहीं उचित ; इतना कह, हिंसाको भुजभर आलिङ्गन कर फेर बोला कि, देखो, जबतक हम इन कुटिल भाई बन्धुवोंका क्या जनमे औ क्या गर्भके निःशेष विनाश नहीं करते तबतक हमारी शरीरमे क्रोधअग्निके कणा नहीं बुझते औ न मेरा चित्त थिर होता है.

ऐसी बातें कहते सुनते लोभ औ तृष्णा क्रोध औ हिंसा ए चारो चारोओर देखते देखते महामोहको देखकर कहने लगे कि, अरे ए तो हमारे महाराज हैं ; चलो, इनके निकट चलें ऐसा विचारकर सबकेसब महामोहजीके समीप आय जयधुनि बोले तो महामोहने उ-

नको देख, आज्ञा दिया कि, तुम जानते हो कि, श्रद्धाकी कन्या शान्ति नाम हमसे विरोधमान, हमारे विरुद्ध आचरण कर-रही है सो तुम सब एकत्र हो उस दुष्टाको विनाश करनेके हेत मन देकर यतन करो. तब लोभादि सकल रङ्गस्थानसे प्रस्थान कर चले कि इतनेमे महामोह बोला कि, येहो ! सुनो सुनो, शान्ति के निग्रह करनेकी एक विशेष उपाय है ; कि शान्ति श्रद्धाकी कन्या है, तो अवश्य उसको माता के आधीन जानो, इससे कोईनकोई छलवलसे उपनिषद देवीके निकटसे श्रद्धाका आकर्षण करनेहीं से माताके वियोगसे अति चीण औ सकल विषयोंसे विरक्त तथा दुर्बल हो आपसे आप शीघ्रही नाशको प्राप्त हो जायगी, किन्तु मिथ्या दृष्टि जो प्रसिद्ध अतिचतुर वेश्या है वही श्रद्धाको भ्रष्ट करने सकैगी ; इससे उसको काम करनेकी आज्ञा देना उचित है.

यह विचार कर जों पासमे देखा, तो विभ्रमावती दासी खडी है; महाराजने उसको आज्ञा किया कि, अरे ! तूं जा मिथ्यादृष्टि

नाम वेश्याको हमारे निकट शीघ्र बुलाके ले आओ; विभ्रमावती आज्ञा शिरधर तुरतही उस कामको चली तो कुछ विलम्ब कर मिथ्यादृष्टि वेश्याको साथ ले विभ्रमावती रङ्गभूमिमे आन पहुंची, कि इतनेमे मिथ्यादृष्टि विभ्रमावतीसे कहने लगी कि, सखी ! अनेक दिनोंसे राजा जीके साथ हमारी भेंट नहीं भई है, तो कैसे उनके सन्मुख जाय अपना मुख देखाउंगी औ राजाभी हमसे वोलैं कि न वोलैं यह कुछ निश्चय नहीं होती है ; विभ्रमावती वोली कि हां दीदी, यह वाततो सत्य है, कि महाराज तुमको देखतेही अचेत हो आप आपेसे न रहेंगे, तो फेर किस प्रकार बातचीत करैंगे. तवतो मिथ्यादृष्टि वोली कि ऐसा कौन हमारे रूप औ स्वरूप है कि वह वात होगी तो वीर! तुम ऐसीवात कहकर काहेको हमारा उपहास करती हौ, विभ्रमावती वोली कि, भला इन सब वातोंसे क्या प्रयोजन है ? तुमारे रूप है कि नहीं सो जानेहींसे देखोगी, एगुइयां ! एक वात और पूछती हैं, कि तुमारे दोनो नयन

इनीदे आलसभरे नींदसे आकुल ऐसे देख प-
डते हैं, सो क्या कारण है, मिथ्यादृष्टिने उत्तर
दिया, बहिन ! क्या तुम नहीं जानती हो ? कि
जो नारी एक पुरुषकी स्त्री है, उसको भी
निद्रा दुर्लभ है, तो सर्व्व जनकी वल्लभा हम कैसे
कर निद्राको प्राप्त होंय, विभ्रमावतीने पूछा,
सखि ! कौन कौन तुमारे वल्लभ हैं; मिथ्यादृष्टि
बोली कि मोह, अहङ्कार, काम क्रोध, लोभ
और महामोहके कुलमें जो जन्मे हैं, उन सब
के हृदयमे हम वास करती हैं, औ हमारे साथ
क्या बालक क्या वृद्ध औ युवा सभी रातदिन
विहार करते हैं. और मेरे विना एकक्षणभी
सावधान नहीं रहते. विभ्रमावती बोली, भला
तो कामके रति औ क्रोधके हिंसा लोभके
तृष्णा स्त्री है अन्य पुरुषोंके भी और और स्त्री
हैं, ऐसा मैने सुना, तो उनके पुरुषोंको तुम कैसे
रमावती हो, क्या उनको उस बातमे ईर्षा
नहीं होती. मिथ्यादृष्टि बोली कि ईर्षाकी क्या
बात है, ईर्षा तो दूर रहै, वे सब स्त्रीभी मेरे
विना एक मुहूर्त्तभरभी आनन्दसे नहीं रह

सकती हैं, तब विभ्रमावती हंसकर बोली कि, सखी ! इसीसे हम कहती हैं कि, इस पृथिवीपर तुमारे तुल्य सुभगा और कोई स्त्री नहीं है, देखो तुमारा ऐसा नसीब है कि सपत्नीभी तुमारी सौभाग्य औ शोभा देख, वैर न करके उलटा अनुग्रह औ आनन्द करैं ; सखी ! तुमारी एक आश्चर्य्य की बात पूछती हैं कि, निद्रा औ आलस वशसे जो डगमग पग धरती पर धरती हौ तो लटपटानेसे प्रतिक्षण बार बार एकसे एकके लगनेसे नपुरोंकी मनोहर मधुरधुनि जो झनकार उटती तिससे सकल पुरुषोंके मनको हरण करती औ भय देती हैं. तथा चञ्चल औ मनोहर गमनसे झुनझुन झनक झनकके द्वारा महाराजको जो जनावती हौ, तौ उनके चित्तको तुम अवश्य शीशङ्कित करोगी यह बडी शङ्का हमै होती है.

मिथ्यादृष्टि बोली महाराजको शङ्का काहे होगी, उनकी आज्ञा होसे हम आनन्दी पुरुषोंको दर्शन दे प्रसन्न करती तो उनको फेर भय कैसी, इसी समै मिथ्यादृष्टिको निकट देख

महाराज कहने लगे कि, अरे देखो! यह मिथ्यादृष्टि सुन्दर सुगन्धविशिष्ट फूलोंसे रची जो कवरी कहे केशकलाप तिसके बन्धनके बहाने से उठाये भये भुजमूलके निकट पीन औ उन्नत पयोधर युगलसे पष्ट प्रकाशरूप विराजमान अर्द्धचन्द्र तुल्य नखचिह्नोंके देखानेसे औ भोर समैके अलियुत नीलकमल दलके समान जो दीर्घ औ चञ्चल नैन तिनकी अपाङ्गभङ्गी स्वरूप कालभुजङ्गीके द्वारा मनरूप अनिलको पान करनेसे तथा नर्त्तित नितम्बोंके भारसे भारी आलसभरी किञ्चित् चल चरणकमल के आभूषणों की मधुरध्वनिरूप कर्णामृत देनेसे, सरस आनन्द दरसावती औ रतिरस वरसावती मन्दमन्द पग धरतीपर धरती चपलाको भी चकित करती यह कामिनी चली आवती है. इतने में विभ्रमावती बोली यही महाराज महामोह हैं, सखी तुम इनके निकटवर्त्तिनी होउ.

तव मिथ्यादृष्टि महामोहके निकट गमन कर, निपट निडर हो बोली, महाराजकी जय! यह सुन महाराजभी मिथ्यादृष्टिके प्रति दृष्टि

घात कर बोले कि, हे प्रिये मृगलोचनी! तू मेरी गोदमें बैठकर नखचिह्नसे चिह्नित अपने कुचद्वयसे आलिङ्गन कर, मेरे वक्षःस्थलको उन्होंसे भूषित करो और जैसे शिवजी की गोद मे बैठ अर्द्धाङ्गी पार्वती शोभा पावती, तैसे तूभी शोभा विस्तार कर, मिथ्यादृष्टि मन्द मन्द हंसती भई, महाराजकी गोदीमे बैठ गई तो वैसी ही शोभा भई महाराज उस आलिङ्गनके सुख का अनुभव कर, यह बोले कि, प्यारी! यह क्या आश्चर्य है कि, तुमारे आलिङ्गन करनेसे हमको पुनर्वार नवयौवन अवस्था प्राप्त भई औ अकथनीय कन्दर्प विकार कहे मन्मथकी चेष्टा, फेर नूतन प्रगट हो, हमारे मनको अन्य सकल विषयोंसे दूर कर अब पूर्व्वकालकी नवीन वयस केसमान शृङ्गारचेष्टासे उत्पन्न जो अन्य विषयोंका प्रतिबन्धक औ चित्तका उन्मादक आनन्द तिसको प्रगट करके हमारे मनको केवल शृंगार रसके सागरमे निमग्न करती है.

मिथ्यादृष्टि बोली, नाथ! मैभी आपके दर्शनसें संप्रति नवयौवन सम्पन्न सी भई, क्योंकि

कपट रहित जो प्रेम सो चिरकालके बीतनेसे भी अन्यथा नहीं होता है. जो होय, महाराज! अब आज्ञा करिये कि, किस निमित्त आपने हमको स्मरण किया है, मोहने उत्तर दिया कि, प्रिये! जो वस्तु हृदयके बहिर्देशमें वर्त्तमान रहती उसका स्मरण होता है, तुम तो चित्तकी पुतरीके समान निरन्तर मेरे हृदयके अन्तर निर्म्मल चित्तरूपी पटमे विराजमान हौ. यह सुन, मिथ्यादृष्टि बोली, महाराज! यह तो मेरे पर आपका अनुग्रह मात्र छोड और कुछ नहीं है.

तब मोहने आज्ञा दिया कि, दासीकी कन्या जो श्रद्धा सो विवेकके साथ उपनिषद देवीका मिलाप करानेके हेत आप कुटनी बनी है, सो तुम अब शीघ्रही उस प्रतिकूल आचरनी नीच पापिनी रांडकी चुंटिया पकडके घसीटती भई लायके पाखण्डके हाथमे सौंप देउ यह मेरा मनोरथ पूरा करो. सो सुन मिथ्यादृष्टिने निवेदन किया कि, इस छोटी तुच्छ बातके हेत महाराजको चिन्ता औ मनोयोग करनेका कुछ

भी प्रयोजन नहीं है, क्योंकि, आपकी आज्ञा मात्रहीसे यह दासी सकल काम सिद्ध कर सकती है; देखो, धर्म्म झूठ, मोक्ष मिथ्या औ सब शास्त्रभी असत्य केवल प्रलाप औ प्रपञ्च है और विचार कर देखो तो धर्म्मादिक एक सांसारिक सुखके प्रतिसन्धक औ व्याघातक मात्र हैं, इससे मैं यह प्रतिज्ञा करती हूं कि, जैसे वह श्रद्धा वेदमार्ग शीघ्र परित्याग करै, सोई उपाय मै करोंगी. अर्थात् उपनिषद को है? सो अति तुच्छ वेदका एकदेश ज्ञानकाण्ड छोड और क्या है? और संसारके नाना प्रकार विषय आनन्दसे रहित जो मोक्ष तिससे अनेक दोष देखाय एक अकेली मैं श्रद्धा औ उपनिषद का परस्पर विच्छेद कराउंगी. महामोह बोले, भला भला बडी बात भई, जो ऐसे होय तो तुमसे हमारे सकल मनोरथ भली भांति सिद्ध भये हैं, इतना कह, महाराज अति आमोद औ आनन्दसे भरे मिथ्यादृष्टि को फेर छातीसे लगाय उसका मुख चुम्बन करने लगे, कि मिथ्यादृष्टि वेश्या झुलझुलाकर कहने लगी,

छि छि राम राम, महाराज भरी सभाके बीच में निर्लज्ज हो तुम यह क्याकाम करते हो जाउ जाउ हमको लाज लगती है, भला, तो चलो हम सब वास घरको चलैं यह कहकर मोह आदि सबकेसब रङ्गभूमिसे प्रस्थान कर उस नखेरे को चले गये.

इति द्वितीय अङ्क संपूर्ण।

तृतीय अङ्क।

तिसके अनन्तर शान्ति औ करुणा रंगभूमिसे आय, शान्ति श्रद्धा को सम्बोधनसे बुलाय सजल नयन आर्त्तस्वर दीनवचनसे कहने लगी कि, हे माता! श्रद्धा तुम कहां हो? हमको दर्शन औ प्रीतिके वचन कह, उत्तर क्यों नहीं देती हो, संप्रति कहे अब इस समै चाण्डाल कशाईके घरमे प्राप्त परवश गौके समान तुम पाखण्डके हस्तगत हो किस दशाको प्राप्त औ कैसे जीवनधारण करती हो, देखो तुमारी जिन सब स्थानोमे सदा प्रीति रहती थी कि, जिस

हिंसा रहित कानन कहे वनमे अपारसार मृग निर्भय चरते औ वास करते तथा जिस हिमगिरिसे देवनदी गंगाजी की धारा गिरती अर्थात् गंगोतरी अथवा गंगाद्वार और पुण्यदायक पवित्रस्थान काशी आदि पुरी, तथा कुरुक्षेत्र गयादि उत्तम क्षेत्र औ नैमिषारण्य आदि सकल तीर्थ, तथा निरन्तर तपस्यामे निरत मुनिमण्डली तो तिन सबके वियोगसे अब तुमारे जीवनकी आश मिथ्या है ; और जो तुम हमै विना स्नान भोजन न करती औ न निद्रा लेती थी, तथा मेरे विना एक क्षणभर भी प्राणधारण नहीं करसकती तो इस हेतुसे श्रद्धा रहित हो जो अब एक मुहूर्त्त भरभी शान्तिका जीवन रहना है वह केवल संसारमे विडम्बना मात्र है, अर्थात् श्रद्धाके विना शान्तिकी कभी उदय नहीं होसकती है, सखी ! करुणा तुम काठ लायकर चिता वनाओ तो हम शीघ्र अग्निमे प्रवेशकर माता श्रद्धाकी सहचरी होंय.

शान्तिकी यह करुणासे भरी वात सुन, करुणा अति करुणासे रोदनकर, शान्तिके प्रति

कहने लगी कि, सखी ! अग्नि ज्वालाके तुल्य औ विषय विषके समान ऐसे मर्म्मभेदी वचनोंसे कमै काहे मारती हो, हम तुमारी विनती कर, यह मांगती औ कहतीहैं कि तुम इतनी बिलम्ब अपने प्राणधारण कर इस स्थानमे रहो कि जितनेमे मै मुनिसमाज औ भागीरथी-तीर तथा पुण्यतीर्थ सर्व्वत्र श्रद्धाको ढूंढकर फिर न आउं, क्या जानैं महामोहकी भयसे किसी स्थानमे प्रच्छन्नरूप हो छिप रही होंय, तब शान्ति, करुणासे कहने लगी, कि सखी ! तुम क्या ढूंढोगो ? हमने तो हरएक स्थानमे ब्रह्मचारी वानप्रस्थ गृहस्थ औ यती इन चारो आश्रमीके आश्रमोंमे देखा औ खोज किया परन्तु कहीं श्रद्धा की बात औ शोध या चर्चाभी न सुना, जो कहो कि और किसी पवित्रस्थानमे होगी तो सुनो, कि अन्य साधारण स्थानोंकी तो बात क्या है जो सब नदीकेतीर मुनिमण्डलीसे शोभित रहते रहेसो सब इस समै खेत वनकर सस्य सम्पन्न होरहे हैं, और यज्ञके करनेवाले यजमान औ अग्नि होत्री तथा वेदपाठीयोंके घरमें अब यज्ञ अग्नि

होत्र औ वेदका प्रसङ्गभी नहीं है, केवल यज्ञ-सामग्री औ साधन पुस्तकादि मात्र रहगई हैं. तब करुणाने शान्तिसे कहा कि यह कैसी बात कहती हौ, जो श्रद्धा सतोगुणी होती तो उस की ऐसी दुर्गति औ दुर्दशा न होती क्यों कि पुण्यशील सुशील स्त्रियें पर ऐसी विपति कभी नहीं परती, इससे श्रद्धा सात्विकी नहीं है.

शान्ति करुणाके प्रति बोली, वीर! देखो विधाताके प्रतिकूल होने पर कहो कौन अनिष्ट की घटना नहीं होती? देखो श्रीरामचन्द्रकी पत्नी पतिव्रता जनकतनया सीता महारानीने रावनके घरमे वासकर अनेकर दुखभोग किया, औ भवपत्नी भवानी भी निज जनक दक्षके घर जाय योग अनलमे जरी औ वेदत्रय-रूपा भगवतीको दानवने हरलेजायकर पातालमे राखा औ पातालकेतु नाम दैत्योंका राजा गन्धर्वराजकी कन्या मदालसानाम को हर लेगया था, इससे विधाताकी घटना सब विपरीत औ दुर्निवार है; होय सो होय, अब चलो देखैं पाखण्डीके घरमे श्रद्धाका सन्धान करैं यही

परामर्ष कर, करुणा औ शान्तिने श्रद्धाके ढूंढ को रङ्गभूमिसे प्रस्थान किया, तो उसी समै करुणा कोई विकटरूप विकराल आकार भयानक मूर्ति देख, भयसे विकलहो बोलउठी, सखी! देखो राक्षस आया, सो सुनकर शान्तिभी चमक उठी औ बोली बहिन, कहां राक्षस है; करुणाने कहा यह देखो, छुटेकेश, भयानक वेषकिये एक पुरुष मोरके पंखका मुरछल हाथमे लिये इसी ओर चला आवताहै, छिछि रामराम! इसकी सारी शरीर सडे विष्टासे भरी चूरही है, देखते घिनावन लुञ्चकेश नग्नवेष अतिही बीभत्सहै, शान्ति बोली, सखी! यह राक्षस नहीं है क्यों कि इसको वीर्य्य रहित देखती हैं; करुणाने पूछा तो यह को है शान्तिने उत्तर दिया कि यहतो मानो पिशाच है, करुणा बोली कि, सखी! जिसके खरतर किरण समूहसे त्रिभुवन प्रतप्त होता, ऐसे जाज्वल्यमान प्रचण्ड मार्त्तण्ड मण्डलके रहते कहो पिशाचके संचारका संभव किस प्रकारसे हो सकैगा, शान्ति बोली तो बूझो नरकसे आवता,

कोई नारकी नर होगा. यह कह फेर भली भान्तिसे देख विचारकर बोली कि जाना जाना यह महामोहका पठाया दिगम्बर-सिद्धान्तनाम चार्वाक है, इससे इसको देखना हम सबको सर्व्वप्रकारसे अनुचित है, यह कह शान्ति औ करुणा अपने२ मुखफेर, उसकी ओरसे विमुख हो, फेर करुणा शान्तिसे बोली, सखी! च्चण-काल विलम्ब करो तो हम इस स्थानमे श्रद्धाको ढूंढै, यह कह दोनो वैसीही खडी हैं कि, इतनेमे महामोहका प्रेरित दिगम्बर सिद्धान्त रङ्गभूमिमे आयकर बोला प्रथमतो परम पूज्य जो जीवात्मा तिसको हम प्रणाम करतेहैं; इस मन्त्रसे अपने इष्टदेवको नमस्कार कर, निजमत के प्रकाश करनेको आरंभ किया.

देखो यह जीवात्मा नवद्वारपुर कहे देह-रूप गृहके मध्यमे प्रज्वलित दीपक के समान देदीप्यमान परमार्थरूप संसारिक सुख औ मोच्च का देनहारहैं,यह बौद्धशास्त्रमे बौद्धराज वृधजीने कहा है, ऐसेही कहते कहते घूम फि-रकर शीस उठाय सभाके चतुर्दिक अवलोकन

पूर्व्वक कहने लगा कि, अरे साधक लोगो! सावधान हो श्रवण करो, कि यह मलिन मल-मय समल कलेवर जलके सेधोवनेसे कै निर्मल औ पवित्र हो सकै है, और जो आत्मा है, सो स्वभावहीसे निर्म्मल औ शुद्ध है यहबात बौद्धशा-स्त्रके द्वारा जानोगे, फेर आकाशकी ओर देखके बोला, अरे क्या कहते हो, कि बौद्धशास्त्र कैसा है सो सुनो इतना कह, दूरसे बुधदेवके चरणों को प्रणामकर कहनेलगा कि, तुम दृष्टदण्डके मध्य मनभावती वस्तुको भोजन करो, ईर्षा दोष छोड कर मुनिपत्नीयोंके साथ विहार करो अ-र्थात् इन सब इहांके सुखदाई कामोंमे प्रवृत्त होउ और दुखजनक जो अश्वमेध गोमेध अजा-मेध राजसूय वाजपेय सौत्रामणि चातुर्मास आदि यागक्रिया तिनकी चिन्ता भी चित्तसे न करना क्यों कि उनके करनेके प्रमाण तो कोई नहीं किन्तु केवल प्राणियोंका वधरूप एक हिं-सामात्र है तो हिंसा न करना परम धर्म्म ऐसी जो श्रुति सोई प्रमाण है यह जानो. फेर दिग-म्बर सिद्धान्त नेपथ्य की ओर दृष्टिपात करके

बोलाकि हे श्रद्धे तुम इहां तो आवो, यह सुन शान्ति औ करुणा सभय हृदय उभय गुप्तभाव से अवलोकन करने लगीं, तिसके अनन्तर दिगंबर सिद्धान्तके वेश सदृश वेष धारण किये तामसी श्रद्धा रङ्गदेशमे प्रवेश कर बोली प्रभु की क्या आज्ञा है, तो उसको देखतेही शान्ति मूर्च्छाखाय कटे वृक्षके समान महीपर गिरी औ अचेतहो गई, दिगंवर बोलाकि श्रद्धे तुमारे विना क्या नास्तीक जन मूर्च्छामात्रभी प्राणधारण करनेको समर्थ नहीं, हां महाराज ऐसेही है इतना कहकर तामसी श्रद्धा तो रङ्गभूमिसे चलीगई, तव करुणा शान्तिके प्रति बोली सखी तुम मूर्च्छा छोडो नाममात्रसे भयकरना उचित नहीं तुमारी माता जो सात्विकी श्रद्धा सो यह नही हैं हमने अहिंसाके निकट सुना है कि पाखण्डियोके एक तामसी श्रद्धा दूसरी होती यह वही होयगी, इस प्रकार जब करुणा ने समझाया तो शान्ति सचेत सावधानहो उठ बैठी औ बोली कि हां सखी यह तामसीही श्रद्धाहै क्य कि यह दुष्ट तामसी श्रद्धा मेरी माता

सात्विकी श्रद्धाकी बराबरी किसी प्रकारसे भी नहीं कर सकतीहै जिसहेतुसे यह दुराचारिणी औ कुदर्शनी औ मेरी माता सदाचरणी औ चारुदर्शनी है, जो होय, आवो अब हम बौद्धों के बीचमे उनको ढूंढैं इतना कह शान्ति औ करुणा तो इधर घूमने फिरने लगीं कि इसी बीच बुधागम नाम एक भिक्षुक रंगभूमिमे आय क्षणकाल मौन रह फेर बौधमत कहनेलगा कि देखो क्षणमात्र स्थाई अर्थात् एक क्षणमे उत्पन्न औ दूसरे क्षणमे नाशको प्राप्त तथा निरात्मक कहे आत्मासे भिन्न जो घटपटादि पदार्थ सो अनादि भ्रमरूप वासनाकी सहायतासे वाह्य-पदार्थके तुल्य यथार्थरूप बुद्धिके विषय होते और जो वह वासना नहोय तो वे पदार्थ भी तैसे प्रतीत नहोंय तो सोई बुद्धि अब वासना रहित हेतुक विषयके संबन्धसे विमुखभई है इतना कह फेर इतस्ततः भ्रमणकर अपना महत्व प्रकाश करते यह कहने लगाकि देखो यह बौधधर्म्म सबसे भला हैं कि जिसमे सुख औ मोक्ष दोनोभी सुलभ हैं और इस बौध मतके

अवलंबी मनुष्योंको जो जो सुख भोग होतेहैं सो सुनो कि मनोहर नगरमें उत्तमघर अर्थात् निरन्तर चित्तके विनोद देनेवाली सुगन्ध द्रव्य औ नाना प्रकार फूलोंसे शोभित औ रूप गुण विनयविशिष्ट सुचतुर वारवनितोंके वृन्द औ मनोरथके अनुरूप कर्म्मकारी भृत्य औ वांछा समैमें यथाभिलाष सामग्री समेत भोजन औ पयफेन सदृश मृदूस्पर्श शय्यापर शयन तथा निरन्तर अङ्गराग औ आभूषणसे भूषित अनुराग पूर्व्वक युवती जनोंकी प्राप्ति औ चन्द्र किरणोंसे उज्ज्वल रजनीके बीच काम-क्रीडाके आनन्दमें कालयापन, इतनेमें करुणाने शान्तिसे कहा, देखो सखी! यह जो उन्नत तरुण ताल तरुके समान लम्बमान हृष्टपुष्ट कलेवर तमाल वरन धरापर धीरे चरन धरत कषाय वास कहे केसुआवस्त्र धारी मुड़िया मूड़मुड़ाये भिखारखाये इहां चलाआवता, सो को है? शान्ति बोली, सखी! तुम नहीं जानती? ये बुधागम नामा भिक्षुक आकाशके अभिमुख हो उपासना करतें औ सबसे कहते कि, हम भगवान

बुधदेव जी के वचन अमृत की पुस्तक पाठ करते हैं, तुम सब सावधान हो सुनो और हम दिव्य नेत्रसे जनोंकी सुगति औ दुर्गति देखते हैं औ सकल भाव कहे उत्पन्न पदार्थ क्षणिक अनित्य नश्वर जानो और आत्माभी स्थायी कहे थिर नहीं है, इससे हे भिक्षुको परदार गमन करनेसे तुम ईर्षा न करो, क्यों कि भाव पदार्थ क्षण क्षण से उत्पन्न औ नष्ट होते हैं, इस हेतु से जिस क्षणमे जो पुरुष जिस स्त्रीको भोग करै, वह उस क्षणमे उसकी स्वकीया है और ईर्षा केवल चित्तका मलमात्र है; यह कह भिक्षुकने नेपथ्यके अभिमुख हो श्रद्धाको आह्वान किया, श्रद्धाने नटशालामे प्रविष्ट हो बाबाजी की अभीष्ट चेष्टामे निविष्ट हो पूछा, प्रभो! क्या अनुष्ठान करैं? उस बुडियाने आज्ञा किया कि तुम भिक्षुक औ उपासक सबको गाढ आलिङ्गन करो, आज्ञा अङ्गीकार कर वह तो वहांसे चलीगई, शान्ति करुणासे बोली सखी! मानो यह तामसी श्रद्धा है, करुणा बोली हां सखी सोई

है ; तदनन्तर दिगम्बर सिद्धान्त उस भिक्षुक को देख, उंचे स्वरसे बोले, अरे भिक्षुक ! निकट तो आउ हम तेरेसे कुछ पूछैंगे, तब भिक्षुक क्रोधकर बोला आः पापिष्ट पिशाच तेरा यह क्या प्रलाप है ! दिगम्बरने कहा ओरे क्रोध नकर कोई शास्त्रकी बात पूछैंगे, भिक्षुक उपहासके साथ बोला कि, दिगंबर तो तूं शास्त्रकी बात जानता हैं ; भला भला हम बहुत सन्तुष्ट भये, ऐसा कोई शास्त्रनहीं कि जो हम नहीं जानते, यह कह, दिगम्बर सिद्धान्तके निकट जायकर बोला कि तेरी क्या प्रश्न है बोल, दिगंबरने कहा बहुतो भला देखें कि जो तूं क्षण विनाशी है, तो किस कारण इसप्रकार कष्टव्रत का आचरण करता है ? भिक्षुकने उत्तर दिया कि सुनरे दिगंबर, हमारे मतका अवलंबी जो कोई जिस समै अनादि भ्रमरूप वासना रहित ज्ञानरूप होगा उसी कालसे मोक्षको प्राप्तहोगा, दिगंबरने प्रतिउत्तर दिया, अरे मूर्ख ! जो किसी मन्वन्तरमे कोई मुक्त होगा तो अब नष्ट जो तूं तेरे व्रतने क्या उपकार

किया? और एक बात पूछते हैं, कि तेरे को इस प्रकार उपदेश किसने दिया है, हाय बड़े कष्टकी बात है. भिक्षुकने उत्तर दिया, अरे! सुन सुन, हमारे मतमे यह व्रत आचरण मुक्तिके प्रति कारण है और जो कहो कि तुमारे मतसे आत्मत्वके क्षणिक ज्ञान वृत्तित्वसे आत्मा क्षणविनाशी है, इससे किसी मन्वन्तरसे कोई एक की मुक्ति भई तो क्या भया भला तो तुमारेही मतकेवीच मृतकमनुष्य की मुक्तिके प्रति क्या युक्ति है, सो कहो और सुनो, यद्यपि आत्मा क्षणविनाशी तथापि देवदत्तत्वादि की धाराग्राहिक ज्ञान पुंजवृत्तित्वसे देवदत्तत्वादि बहुकाल स्थायी है, तो सुतरां देवदत्तादि जो हम तिसके अविनाशित्व निमित्तसे समय विशेषमे अवश्य मुक्ति होगी, और सर्व्वज्ञ जो भगवान बुधजी साक्षात् तिनसे हम उपदेश पाया हैं. तब दिगंवर सिद्धान्तने कहा कि अरे! बुध जो सर्व्वज्ञ सो तने कैसे जाना, उसने उत्तर दिया बौद्धशास्त्रहीसे यह लोक वाद प्रसिद्ध है कि बुद्ध जी सर्वज्ञ हैं; यह सुन दिगंवर बोला

कि, ठीक है निर्म्मल बुद्धि जो तुम तो तुमारे वचनहीं से जो सर्व्वज्ञता सिद्ध है तो हमभी सर्व्वज्ञ काहेसे नहोंय अरे तू और तेरे पितृपितामह सात पुरुष लौं हमारे दास यहभी वचन सिद्ध औ सत्यमान, तब भिक्षुक क्रोध करके बोला, आः पापी पिशाच! हम तेरे दास हैं रे, दिगंबर बोला हां तू अवश्य दासशील है, रे आश्रमभ्रष्ट! तिसका प्रमाण तेरी तामसी श्रद्धा है, अब हम तोको एक भला उपदेश करते हैं, सो सुन, कि बुधमत को छोडकर हमारे मतका अवलंबी होय दिगंबरव्रत का धारण कर, उसने उत्तर दिया, अरे पापिष्ठो! अधम एकतो तू आपही नष्ट फेर दूसरे कोभी नष्ट करने की चेष्टा करता हैं, स्वर्गसुखरूप जो यह बुधमत, तिसको परित्याग कर, कौन ऐसा उत्तम पुरुष तेरे तुल्य है जो जगनिन्दित उस पिशाच धर्म्म की वांछा करैगा, और इस बुध धर्म्मसे अधिक उत्तम कौन दूसरा धर्म्म है? कि कोई मनुष्य उसकी श्रद्धा करेगा, तब दिगंबर सिद्धान्त बोला कि, हमारे प्रभूकी जो सर्व-

ज्ञता औ महिमा सो उल्कापात ग्रह नक्षत्रादि की गणना औ चन्द्र सूर्य्यके ग्रहण की निर्णय तथा नष्ट भये धन औ वस्तुके लाभ होने का यथार्थकथन आदिसे सिद्ध औ प्रसिद्ध भई है.

भिक्षुकने हंसकर उत्तर दिया, अरे! वंचक लोगोंके स्वकपोल कल्पित ज्योतिष शास्त्रके द्वारा अतीन्द्रिय कहे परोक्ष विषयके ज्ञानसे वञ्चित हो, तुम सब इस कष्ट व्रत का आचरण करते हो, भला तुहीं कह देखें कि शरीरके मध्य वर्त्तमान जो जीव सो प्रत्यक्ष वस्तुको छोड कर और त्रिलोककी सामग्रीका ज्ञान करनेको किस प्रकारसे समर्थ है, देखो घरके बीचमे बरता भया दीप जो गृहमध्यगत सकल पदार्थों को प्रकाश करता, सो यदि कलसके बीचमे धर-दिया जाय तो वह दिया भवनके भीतरीभी वस्तुवोंके प्रकाश करने को असमर्थ हैं, इस हेतुसे उभय लोकके विरुद्ध जो तेरे प्रभूके मत से सिद्ध अशुद्ध व्रत तिसकी अपेक्षा बौद्ध मतही साक्षात् सुखजनक है, इस हेतुसे हमलोग वही मत उत्तम मानते औ देखते हैं.

शान्तिने करुणासे कहा सखी चलो, दूसरे स्थानको चलैं, करुणा बोली; चलो, कहां चलोगी? इतना कह, वे दोनो जों अन्यत्र को चलीं कि अपने सन्मुख देख, शान्तिबोली औ सखी देखो आगे सोम सिद्धान्तजी खडे हैं, तो चलो हम इहांसे और कहीं चलैं यह कह, वे तो वहांसे चली गईं और सोमसिद्धान्त रङ्गभूमिमे आय इधर उधर घूमते २ कहने लगे, कि, ये हमारे अपूर्व्व दर्शन करो और देखो हम सुतक मनुष्योंके हाडोंसे बने उत्तम मालाके जालोंसे भूषित औ श्मशान वासी तथा नरकपालके पात्रमे भोजन करते हैं और सांचो सांच हम परम योगी तो योगरूप अञ्जनके द्वारा निर्म्मल अपने ज्ञाननेत्रोंसे देखते कि, यह जगत परस्पर पृथक है, किन्तु परमेश्वरसे पृथक् नहीं है; तब दिगम्बर सिद्धान्त बोले कि, येहो! यह पुरुष कपालीमत धारण किये है, भला हम इस के प्रति प्रश्न कर देखैं कि यह क्या उत्तर देता है? ऐसे कह, उसके निकट गमन करके पूछा कि, अरे कपाली! तेरे मतमे सुख

औ मोक्ष किसप्रकारसे है ?. सोमसिद्धान्तने उत्तर दिया कि, हे दिगम्बर ! मेरा मत श्रवण कर, कि मनुष्योंके तत्कालके कटे भये गलोंसे गलित रुधिर धारसे आर्द्र कहे भीगी जो वलि तिस पूजासे हम केवल महाभैरव देवजी की अर्चना करते और नरका तेल अथवा मज्जासे मिला जो महामांस तिसकी आहुतिसे हम अग्निमें होम करते हैं और नरके कपाल पात्रमें सुरा भर कर अपना पारण करते हैं.

यह सुन भिक्षुक दोनो करसे अपने कान मुंद, बुध बुध ऐसे नामका उच्चार करके कहने लगा, क्या आश्चर्य्य है कि इनका धर्म्म आचरण ऐसा भयङ्कर है, दिगंबर अपने इष्टदेवके स्मरण पूर्व्वक बोले कि किस महा पापीने ऐसे नीच धर्म्मका उपदेश दिया है, यह सुनते ही सोमसिद्धान्त क्रोध कर कहने लगे कि काहे रे पाखण्डी ! मुण्डित मुण्डी चण्डाल वेष धारी देव विरोधी जिसका ऐश्वर्य्य कहे विभव वेदान्त सिद्धान्तसे प्रसिद्ध और जो चौदहो भुवनकी सृष्टि औ संहार तथा पालन करने वाले ऐसे

जो भगवान भवानी पति भोलानाथ तिनकी निन्दा करता है, सुन२ हमारे इस धर्म्मकी महिमा कहां लौं है सो तूं नहीं जानता, अरे! हरि हर ब्रह्मा इन्द्र आदि प्रधान प्रधान देवतोंको अपनेनिकट हम बुलाये सकतेहैं और यह समग्र मेदिनी वन पर्व्वत नगर नर समेत जलप्लावित कर, फेर उस जलको एक क्षणके मध्यमे पान कर सकते हैं, तब दिगंगर सिद्धान्तने कहा कि तो, सोम! तू कोई इन्द्रजालके द्वारा कुछ थोड़ा अलीक कहे मिथ्या चमत्कार व्यापार देखायकर क्या सिद्ध पुरुष बनवैठा जो इतना गर्वित औ गजता है.

यह सुन, सकोप सोम सिद्धान्त बोला कि, ओरे पापात्मा झूठा! बार बार परमात्माको इन्द्रजाली कहता है, इससे हम अब तेरी अपराध क्षमा न करेंगे, इतना कह, अति रोस कर, कोससे बाहर खड्ग निकाल, कालके समान बोला कि, जो शब्दायमान डमरूके डंकृति नादसे भूत वैतालों को आह्वान कर नृत्य औ गान करते सोई महादेव सहित महादेवी

जी को हम इसी भयङ्कर तरवारसे छिन्नकरके दुष्टोंके गलेसे उद्गत अनिलके द्वारा गलित फेनिल औ सबुद्बुद रुधिरसे तर्पण करतेहैं, इतना कह खड्ग उठाय कर ज्यों चला कि उस समै दिगंबर सिद्धान्त की सीटी सट्ट भूल गई मारे भयके कम्पमान अहिंसा परम धर्म्म है यही वचन मात्र कहते भये भागके जाय भिक्षुक की शरण लिया. तब भिक्षुकने सोम सिद्धान्तको निवारण करते उपहांस कर कहा कि एहो धार्म्मिक महाराज! कौतुकके हेत वाककलह से इतना कोप कर, खड्ग प्रहारसे इस तपस्वी का संहार करनाहीं आपका विचार सिद्ध है भिक्षुककी बात श्रवणकर सोमसिद्धान्त शान्त हो, खड्गको नीची कर लिया, तब दिगंबर निर्भय हो कर बोला कि महाराज जो आप कठोर कोपकर घोरतर हिंसा रूप प्राणान्त कर्म्म से शान्तभये तो हम अब आपसे कुछ पूंछते हैं कि मैने तुमारा परमधर्म्म तो सुनाहै परन्तु तुमारे मतमे सुख औ मोक्ष किस प्रकारके हैं

सो अब श्रवण करनेकी मेरी बडी इच्छाहै, सोम सिद्धान्त बोला कि अरे तो श्रवण कर.

विषय सुखको छोड कर कभी किसीने कहीं दूसरा सुख नहीं देखा, ज्ञान औ आनन्दसे रहितहो जो जीवका रहना तिसका नाम मुक्ति नहींहै, तो तुमसब काहेको ऐसी मुक्तिके अर्थ व्यर्थ प्रार्थना करतेहौ कि जिससे आनन्द औ ज्ञानसे शून्यहो जड पाषाणरूप जीवकी स्थिति होय, क्यों कि तुमारे मतसे सिद्ध जो ऐसी मुक्ति, तिसमे ज्ञानके अभाव कहे नरहनेसे जीव प्राय: पत्थरके तुल्य होता है, किन्तु दुखलेशके अत्यन्त अभाव विशिष्ट शिष्ट दिव्य अङ्गनोंके संभोगसे उत्पन्न जो अविछिन्न कहे निरन्तर सुख प्रवाह तिसका नाम मोक्ष है, इसीसे अपने सदृश जो स्वकीया प्रियतमा प्रमदा पार्व्वती तिनसे निरन्तर आलिङ्गन को प्राप्त हो, परम आनन्दसे क्रीड़ा करते जो भवानी पति भगवान जीवन्मुक्त महादेव तिनोंने अपने योग युक्त आगम शास्त्रसे ऐसी ही भुक्तिरूप मुक्तिको मुक्ति कहा है.

तब भिक्षुक बोला कि एहो महाराज! तुमारी यह ओच्छी मोक्ष तो श्रद्धाकरने योग्य नहीं है, क्योंकि क्रोधी औ विषई मनुष्योंके मत औ पक्षके अनुकूल औ अनुरूप है, परन्तु उत्तम शान्तस्वभाव मुमुक्षु मनुष्योंके मत औ पक्ष तथा प्रकृत मोक्षके नितान्त विपरीत औ प्रतिकूल है, तब फेर दिगंबर सिद्धान्त बोला कि, अरे कपाली! जो तूं रुष्ट न होय तो कुछ कहैं कि देख, जो शरीरधारी सोई मुक्त यह अति विरुद्ध औ कभी युक्तिसे युक्त नहीं, इससे जीवन्मुक्त जो तूने कहा सो असङ्गत है, सोम सिद्धान्त बोला कि इन दोनों का भी अन्तःकरण मलिन औ श्रद्धारहित अश्रद्धासे आक्रान्त है; भला अब हम श्रद्धाको तो आह्वान करें, यह अपने मनमे विचार श्रद्धाको बुलाय कर बोला कि; हे श्रद्धे तुम शीघ्र ही हमारे निकट तो आवो सो सुन, कपालिनी का रूप धारण किये राजसी श्रद्धा रङ्गभूमिमे आय प्राप्त भई तो उसको देखकर करुणाने शान्तिसे कहा कि सखी देखो देखो, यह विलासिनी राजसी

श्रद्धा केवल नरोंके अस्थि निर्म्मित अलङ्कारोंसे अलंकृत कहे भूषित हो सर्व्व-साधारण मनुष्योंकी मनउल्लासिनी वारविलासिनी के भावसे हाव भाव करती कैसी भली शोभा का धारण करती है कि इसका मुख मानो चन्द्र औ नेत्र दोनो प्रफुल्ल नील कमलके तुल्य तथा करिकुम्भ औ मदन दुन्दुभीसे नितंब चिक्कन चिबुक कपोल मृदु बोल कुण्डल लोल कदली स्तम्भसे जंघ अङ्ग२ प्रति सुन्दर उन्नत उरोजों के भारसें नत कैसी मृदुमन्द धीरे२ चरणधरा पर धरती चलती है, राजसी श्रद्धा सोम सिद्धान्त के निकट आयकर बोली कि नाथ ! यह दासी प्राप्त भई आज्ञा करिये, सोमने कहा कि प्रिये! भलाइस अहङ्कारी भिक्षुक को एकवार अङ्कवार भर आलिङ्गन तो करो.

उसने उनकी आज्ञापाय जों उसको आलिङ्गन किया कि भिक्षुक भी उस राजसी सुन्दर श्रद्धाको परम उमंगसे सर्व्वाङ्ग गाढ आलिङ्गन कर रोमाञ्चित-तनु गद्गद वचनसे बोला कि, अःहाः ! क्या आश्चर्य्य है, इस कपालिनीके

आलिङ्गनसे लोकातीत विदित सुख होता, देखो अविरत करतल युगलके स्पर्श औ फेरने से प्रफुल्ल जो घन पीन औ उन्नत कठिन पयोधर युगल तिनके भारसे, आलस भाव शालिनी कितनी वार वारविलासिनीयों को हमने अधिक अनुरागसे गाढ आलिङ्गन नहीं किया परन्तु सौ सौ वार बुधजी की शपथ करके कहैं हैं कि इस कपालिनीके स्थूल औ उंचे कठिन कुच मर्दन सहित आलिङ्गन से उत्पन्न आनन्दके सदृश आमोद जो कदाचित् कहीं प्राप्त भया होय तो होय; फेर बोला कि, इसकपालीके चरित्र कैसे विचित्र औ पुन्यजनक पवित्र हैं.

इस हेतुसे सोम सिद्धान्त ही सर्व को अपेक्षा श्रेष्ठ और यह धर्मभी सबसे जेठ औ उत्तम आश्चर्य रूप है, हे महाराज! हमने मन वच कायसे सर्वथा बुधमतका परित्याग किया, और परमेश्वर महाभैरवजीके चरणको शरण लिया अब आप मेरे गुरू औ मैं आपका चेला हो चुका तो आप महाभैरवजीका मन्त्र शिष्यको ग्रहण करावो, उसके मुखसे ऐसे वचन

सुनते ही दिगम्बर-सिद्धान्त, क्रोधसे भरे यह बोले कि, अरे भिक्षुक! तूं इस कपालिनीके अङ्ग सङ्गसे बड़ा सुखी संतुष्ट भया तो तेरा मुख देखने योग नहीं, इससे अरे मनपोषी दोषी! तूं अब इस स्थानसे दूर हो.

भिक्षुक बोला, एरे पापी दिगम्बर तूं कपालिनीके अङ्ग आलिङ्गन सुख औ आनन्दसे वञ्चित है इसी हेत ऐसे बोलता है, कि इतने मे सोम सिद्धान्तने कहा कि प्रिये कपालिनी! इस सदर्प दिगम्बर-सिद्धान्तको कन्दर्प-मन्त्रसे तुम अपने वशीभूत तो, करो तब स्वामीकी आज्ञा पाय कपालिनीने दिगम्बरको मनोहर निबिडतर गाढ आलिङ्गन कर अपनेवश किया, दिगम्बर भी रोमाञ्चित तनु औ मूढ मति हो कहने लगा कि ईश्वर ईश्वर इस कपालिनीका स्पर्श कैसा आश्चर्य सुख स्पर्श है, सो हे सुन्दरी कपालिनी! पुनर्वार एकवार और भी वैसेही आलिङ्गन करहमको हर्षित करो, हायरे हमारे अनिवार इन्द्रिय विकार प्राप्त भया, तो अब क्या करना उचित है, कपालिनी बोली आवो हम

तुमको अब अपनी पीठके पीछे लुकावैं दिग-म्बरने कहा कि हे पीन उन्नत पयोधरे! हे भय चञ्चल कुरङ्ग नयने! कपालिनी! जो तुम उसी प्रकारसे हमको रमण करावोगी तो हमारी तामसी श्रद्धा क्या करेगी. देखो कैसा चमत्कार कपालिनीका दर्शन अपूर्व सुख औ मोक्षका साधन है, तो हे सोमाचार्य्य हमभी तुमारे शरणापन्न सेवक हैं हमै भी भैरवजीके मन्त्रका दानदेके जीवन मुक्त कर इस दुखको हरो.

तब सोमसिद्धान्तने यह कहा कि, तुम दोनो जने इस आसनपर बैठो, दिगंबर औ भिक्षुक दोनो एकसाथ आसनपर बैठे और सोम सिद्धान्तभी अपने आसनपर बैठ पानपात्र करसे ग्रहण करके इष्टदेवका ध्यान करते२ करस्थित उस पात्रको पुनःपुनः चञ्चल करने लगे, तो कपालिनीने कहा कि, हेनाथ! अब पानपात्र सुरासे परिपूर्ण भया है, सोमसिद्धान्तने उसमेसे कुछ पान करके बाकी भिक्षुक औ दिगंबरको देने की आज्ञा दिया और कहा कि, संसाररूप व्याधिकी महौषधी औ भावरूप रसका सिर्जन

कार तथा पशुजनोंके पास वन्धन का काटन हार यह पवित्र महाभैरवजीका प्रसाद भोग सार ऐसे ही भैरवजी ने निजमुखसे कहा है; इस हेतुसे इस अमृत को तुम पान करो.

यह सुन वे दोनो परस्पर कानाकानी कर चुप चाप रहे फेर प्रथम दिगंवर कहने लगा कि हमारे मतसे सुरा पान अविहित औ निषिद्ध है, पीछे भिक्षुक भी वोला कि, इस कपाली सोमसिद्धान्त का उच्छिष्ट कहे जूठा मदिरा हम कैसे पान करैं; यह उनके परस्पर घुस फुस की वात जो सोमके श्रवणमे आई तो उसने पूछा कि, तुम आपससे क्या कनफुसकी करतेहो, इतना कह कपालिनीके प्रति अवलोकन कर वोला कि, प्रिये! अवलों भी इनकी पशुता औ जड़ता दूर नहीं भई, क्यों कि ए हमारे मुखके संसर्ग दोषसे इस अमृत को दूषित औ अपवित्र ज्ञान करते हैं; इससे तुम अपने मुख का अधरामृत मिलाय पवित्रकर इन दोनोको पान करावो, क्योंकि तीर्थवासी औ पण्डित जन कहते हैं कि, कामिनी का मुख सर्वदाई

पवित्र औ अधरमे अमृत है, कपालिनीने निज नायक की अनुमति पाय, ओष्ठ पल्लव का रस मिलाय पवित्रकर उस सुरा को लाय फेर उन दोनो के करमे समर्पण किया,

भिक्षुक उस कपालिनी का जूठा मदिरा महाप्रसाद जान ज्ञानपूर्व्वक पान करते करते बोला कि, अःहाः देखो! इस मदकी क्या चमत्कार सुगन्ध है, जिस हेतु कामिनीके कमनीय वदनकमल के मधुर मधुरस मिलने से अपूर्व्व स्वाद औ सुगन्ध भई है, यदपि विकसित मुकुल वकुल सुमन कुल की आमोदसे सुमधुर जो मधु सोभी हमने वारनारीयोंके साथ कितनी वार पिया पर कपालिनीके उच्छिष्ट मधुके सदृश सुरारस का स्वाद रसना ने एकवार भी नहीं पाया, यह सुन दिगंवर बोला कि, एहो, भिक्षुक कपालिनीके अधरामृतसे मिले भये इस उत्तम अमृत को सवकासव आप ही न पान करलेना अनुग्रह करके हमको भी कुछ इसमेसे देना, तव भिक्षुकने वाकी रहा सो दिगंवरके हाथसे दिया, दिगंवरने भी किञ्चित्

पान कर कहा कि, आः! क्या विलक्षण स्वाद औ सुगन्ध है, देखो हम चिरकालसे अपने गुरुजी के मत मे पडकर सुख औ मोक्ष का साधन जो यह सुरारस तिससे वञ्चित हो रहेथे इतना कह, सवकासव पान कर वह फेर कहने लगा कि, भिक्षुक! हमारी सर्व्वाङ्ग देह घूम रही है, इससे हम अव शयन करें तो भलाहै भिक्षुक बोला कि, आवो हम तुम दोनोभी शयन करैं, तव तो सोमसिद्धान्त बोले कि, प्रिये कपालिनी! अवतो ए दोनो हमारे विनमोलके दास भये, तो आवो हम तुम नृत्य करैं; यह कह दोनो नाचने लगे, सो देख दिगम्बर अपने अन्तःकरणसे हर्षसे पूर्ण हो भिक्षुकसे वोला कि, देखो! सोमसिद्धान्त कपालिनीके साथ कैसा सुन्दर नाचते हैं; इससे आओ हम भी इसके साथ नाचैं, इतना कह, नाचने लगे और दिगम्बर कुछ अल्लवल्ल गानभी करने लगा, भिक्षुक वोला कि, हे आचार्य्य! क्या आश्चर्य्य है कि, इस नाचके देखनेसे लाखलाख अभिलाख सिद्ध होती हैं, तव सोम

सिद्धान्त बोले कि, यह कौतुक कहां लों है सो देखो कि, आगम-शास्त्र कहे वाम-मार्गसे शीघ्र विषय परम सुखके अभिलाषी पुरुषोंको स्रक् चन्दन वनिता संभोगादि विषय सुख सम्पूर्ण तो रहताही है और अणिमादि आठ सिद्धिभी सिद्ध होती हैं तथा योग साधनके अन्तमे जो उच्चाटन, मारण; मोहन, वशीकरण, आकर्षण, स्तम्भन, प्रचोभन, प्रक्षेपण, विलापन आदि प्राकृत सकल फलसिद्धि सोभी सिद्ध होती हैं, दिगम्बर सिद्धान्त मदसे उन्मत्त हो हास्य औ वक्रोक्ति कहे टेढी मेढी असंलग्न कहे वे जड़ पेड की बातें करने लगे तो भिक्षुक हंसकर बोला कि, एहो तपस्वी ! यह अभ्यासके विना अधिक मद्यपान कर उन्मत्त भया है, इससे इसका उन्माद दूर करो, यह उसकी बात सुन सोमसिद्धान्त ने अपनी जुठी पाबकी सीठी उस दिगम्बर के मुखमे डाल दिया, तो दिगम्बर सावधान सचेत हो सोमसिद्धान्त से बोला कि हे आचार्य्यजी हम आपसे यह एक बात पूछते हैं कि, जैसे आपके वशीभूत सुरा का आ-

र्षणहै तैसे ही वनिता आदि और और वस्तुका भी आकर्षण क्या वशीभूत है.

तब सोमसिद्धान्त बोले कि इसका सब वृत्तान्त हम विशेषसे कहते हैं तुम सुनो, कि विद्याधरी, देवाङ्गना, असुराङ्गना, नागकन्या औ यक्षकन्या इस त्रिभुवनसे जिस किसी वस्तु की वांछा हम करैं तो विद्याके बलसे सोई वस्तुको आकर्षण कर सकते हैं. दिगम्बरने कहा कि, हे गुरुजी! जोतिष विद्यासे जाना कि हम सब महामोहके दास हैं, सोमने कहा सत्य है; तब दिगंबर बोला कि, महामोह की आज्ञासे सात्त्विकी श्रद्धा को इहां लेआवो सोमने कहा सो दासी की कन्या सात्विकी श्रद्धा क्या जानैं कहां है पर तौ भी कहो तो हम विद्याके बलसे इसी क्षणमे उसका आकर्षण करैं इतना कह गणना करने लगा कि इसी समैमे उनकी एबातैं सुन, शान्तिने करुणासे कहा कि; हे सखी! इनके मुखसे अपने हित की बात औ कुछ मङ्गल सुनती हैं, इससे आवो मनचित लायकर सुनैं, तब तो आनन्दसे

भरी करुणाबोली, हां सखी! तो हमतो यह शुभ संवाद गुप्त भावसे सुनैं, दिगंबर गन गूंथ कर बोला कि, वह सात्विकी श्रद्धा न जलमे न थलमे न अन्तरिक्ष न पर्व्वत न पातालमे है परन्तु विष्णुकी भक्तिके साथ कोई कोई महात्मा पुरुषके निर्म्मल चित्तमे टिकी है, यह सुन करुणा सहर्ष बोली, सखी! और कुछ सुनती हो हमारी भागके बलसे माता श्रद्धा कोई कोई योगी जनों के हृदयमे विष्णुभक्तिके साथ बस करती हैं; शान्ति तो आनन्दमे मगन हो नाचने लगी और इसी बीचमे सोमने आज्ञा किया कि, एहो गणक! देखो तो निष्काम कर्म्म कौन स्थानमे है, दिगंबरने जोतिष-गणनाके द्वारा कहा कि वह भी और कहीं नहीं है उसी विष्णुभक्तिके साथ ही है.

यह सुन सोम नितान्त भी खिन्नमन हो बोले कि बडे शोच की बात है कि, महामोहको अत्यन्त विपद आन कर उपस्थित भई क्योंकि महामति यती जनोंके हृदयमे विष्णुभक्ति के स्थिर होने की मुख्य आदि कारणरूप सात्विकी श्रद्धा

जो विष्णुभक्तिके साथ भई औ निष्काम कर्म्मभी उसके अनुगत है तो सुतरां विवेक का मनोरथ प्राय सिद्ध भया, भला तौ भी, महाराज महामोहजीके काज अपने प्राण पण पर्य्यन्तभी हमको चेष्टा अवश्य कर्तव्य है, इस हेतु से अब हम निष्काम कर्म्म औ सात्विकी श्रद्धाके आकर्षण हेत महाभैरवी को पठावें' इतनी बातें कर सोम प्रभृति सब रङ्गभूमि से सरके औ शान्ति करुणासे बोली कि चलो, सखी! हम भी इस दुष्ट सोमकी कुचेष्टा चलकर विष्णुभक्ति से निवेदन करैं, इतना कह, शान्ति औ करुणाने भी रङ्गस्थान से प्रस्थान किया.

तृतीयअङ्क सम्पूर्ण।

चतुर्थ अङ्क।

तिसके अनन्तर मैत्री रङ्गभूमिमे प्रवेश कर इधर उधर डोल फिर कहने लगी कि मैने मुदिताके मुखसे सुना है कि हमारी प्रिय सखी

श्रद्धा को महाभैरवीके भयानक दर्शन की भय से विष्णुभक्तिने परित्राण किया है ; परन्तु मेरे चित्तमे उनके दर्शनकी अभिलाष होती, इससे अब हम अपनी प्रिय सखीसे भेंट करैं ; तिस पीछे श्रद्धा रङ्गभूमिसे आय, चारो ओर अवलोकन कर, भयसे कम्पमान कहने लगी कि देखो, नरकपाल के निर्म्मित कुण्डलोंसे भूषित औ अनल-शिखाके तुल्य पीतवर्ण केशकलाप से शोभित औ दांत पांतिरूप चन्द्रकला से प्रकाशमान जो आनन का आकाश तिससे लोल लंबी रसना श्वेत भुजङ्गी सी तथा विद्युतलताके सदृश चञ्चल नैनों की लपक देखावती भई ऐसी घोर भयङ्कर आकार सें गौरवी जो महाभैरवी तिसके दर्शनसे अबतक भी मेरा मन चलदलके दल तुल्य औ देह कदली तरुके समान चञ्चल औ कांपरही है, मैत्रीने श्रद्धा को देख मनमे विचार किया कि यह मेरी प्रियसखी श्रद्धा भयसे व्याकुल औ कम्पमान मानो मनमे कोई चिन्ता कर रही है, इसी हेतुसे सन्मुख खडी भई भी मेरीओर एकवारहू नहीं देखा, होय हमही

क्यों न जाके इनसें संभाषण करैं यह अपने मनमे विचार करके वोली कि, हे सखी श्रद्धा! किस हेतुसे तुम ऐसी वडी चिन्तासे व्याकुलहो कि हमारी ओर एक वारभी नहीं देखती हो.

तव श्रद्धा मैत्रीके प्रति अवलोकन-पूर्व्वक दीर्घश्वास लेकर कहने लगी, कि एहो सखी मैत्री! हम महाभैरवीके भयावने मुखमे करा-ल दाढोंके वीच पडकर भी जो इसी जन्ममे फेर तुमको देखा तो तुम अव मेरे निकट आय एकवार अंकवार देउ, मैत्रीने आनन्दसे श्रद्धाको आलिङ्गन कर पूछा कि, सखी! उस भैरवीके भयसे क्या अव भी तुमारे अङ्ग कांपते हैं? श्रद्धाने कहा हां, सखी! सो सुन मैत्री भयसे भीत औ दुखी हो कहने लगी कि ओः होः मिथ्या आशारूप वायुके वेगमे घूम रही जो भैरवी तिसने आयकर हमारी सखी श्रद्धा की क्या क्या दुर्दशा किया है तो श्रद्धा वोली सखी सुनो, जैसे वलवान सेनपची दूसरे दुर्व्वल वि-चारे छोटे पच्छियों पर टूटकर झपटसे आन पडता हो और जैसे गीधिनी दोनो चंगुलसे

मांस दवायकर गगन मण्डलको उडजाय तैसे ही वह भैरवी एक सखी मेरे ऊपर आन परी तो एक हाथसे साधुजनके हृदयसे थिर बैठी भई इसको और दूसरेसे निष्काम धर्मको ग्रहण कर आकाश को चली गई, श्रद्धाके मुखसे यह संवाद सुनते मात्र हाधिक कहकर मैत्री मूर्छागत भई, तो श्रद्धाने कहा सखी! यह क्या है, डर कुछ नहीं; तब मैत्री मूर्छासे जाग सचेत हो बोली सखी फेर क्या भया, श्रद्धा बोली सखी तब तो हमारा दीन करुण रोदन वचन सुन दयाकर वह विष्णुभक्ति भैरवीके प्रति भ्रूभङ्गी भयङ्कर बनाय अत्यन्त क्रोधसे रक्तवर्ण नेत्रों को कुटिल कटाक्ष से देखा तो, भैरवी मानो वज्राघातसे भग्नपर्व्वत-शिलाके समान धराके ऊपर धड़ाक गिरपड़ी अङ्ग सब चूर हो गये. यह सुन मैत्री बोली कि, आः! मेरी प्यारी श्रद्धा! तुमने बडी भाग्य औ पूर्व्व पुण्यके प्रतापसे उस दुष्ट व्याघ्रीके कराल मुखसे मृगी के समान उस काल कालरूप कपालिनी के मुखका कौर होनेसे बंचकर पुनर्जन्म पाया है,

मैत्री फेर बोली कि; सखी! तिसके अनन्तर फेर और क्या क्या भया सो तो कहो.

श्रद्धा कहने लगी कि विष्णुभक्ति देवीने मन दे कर प्रीति पूर्ब्बक यह वात कहा कि, महामोह के वशीभूत हमारा अनादर करने वाले ऐसे विरोधी कर्म्मसे प्रवृत्त जो ए कामादिक, इनको अवहीं मै मूल सहित उन्मूलन करोंगी और हम को भी यही आज्ञा दिया कि, श्रद्धा तुम विवेकके निकट जाय काम क्रोधादि की पराजयकरनेके हेत उद्योग करनेको उनको कहो, सो होनेसे वैराग्य प्रगट होगा और हम भी शम दम प्राणायाम प्रभृति उनके सेनाधिपतियोंको एकट्ठे करैं और देवी सत्य वाणी प्रभृति शान्ति आदिके द्वारा उपनिषद देवीसे सङ्ग किये जो विवेक तिनके प्रवोध उदय नाम पुत्र का अनुसन्धान करती हैं, तो विष्णुभक्तिकी आज्ञासे हम इस समै विवेकके निकट को गमन करैं, सखी तुम यह समै कैसे वितावोगी.

मैत्रीने कहा कि, सखी! मुदिता करुणा क्षमा समेत हम भी चारो वहिन विष्णुभक्तिकी

सहायतासे महाराज विवेकके कार्य्यसिद्धिके अर्थ महात्मा जनोंके हृदयमे वास करें, जिस हेत वै महात्मा जन सुखी मनुष्योंमे हमको औ दुखियोंमे करुणाको पुन्यशीलोंमे मुदिता को तथा कुमति कुचाली जनोंमे चमाको ध्यान करते हैं, क्योंकि, इस प्रकार इन चारोंके स्म- रण करनेसे राग लोभ द्वेषादि दोषसे दुष्ट औ मलिन भी मन, विवेकी होता है, इससे हम चारो वहिन उस विवेक की मङ्गल चेष्टामे काल काटैं, श्रद्धाने पूछा, सखी मैत्री! हम अब किस स्थानमें महाराज विवेकके दर्शन पावेंगी मैत्रीने श्रद्धाको वेदवाक्य सुनाया और कहा कि वाराणसी नाम एक पवित्र पुणत्र स्थान है तहां भागीरथीके तीर जलके निकट शोभाय- मान जो शिलोच्चय नामक चक्रतीर्थ तिस तीर्थ मे कर्म्मकाण्डीय वेदार्थके अनुगत वुद्धिके द्वारा किसी प्रकार प्राण धारण कर व्याकुल-चित्त उपनिषद देवीके साथ मिलने की आशा पर तपस्या कर रहे हैं, तहां को शीघ्र तुम जाउ और हम भी अब आज्ञाके अनुसार कर्म्म क-

रनेको आरम्भ करैं; इतना कह श्रद्धा औ मैत्रीने रङ्ग स्थानसे प्रस्थान किया.

तिस पीछे महाराज विवेक मीमांसामति सहित रङ्गभूमिमे आयकर बोले कि, आः अरे पापिष्ठ महामोह ! तूं एकतो आप नष्ट और दूसरों को नष्ट कर अब हमको भी सर्व्वप्रकार नष्ट करने की इच्छा करता है, जिस हेतु शान्तिरसरूप अशीम महिमासे युक्त निर्म्मल चैतन्य औ आनन्दजनक तथा तरङ्गसे रहित जो अमृत सागरका सलिल तिसमे एकवार निमग्न हो करकेभी मैंने कुछभी रसका आस्वाद न पाया किन्तु असार विषय-मृगतृष्णारूप अपार सिन्धु जलसे भ्रान्त औ मुग्ध हो पान आचमन अवगाहन क्रीडन मज्जन औ उन्मज्जन करते हैं; देखो संसार-चक्रमे जीवोंका जो भ्रमण तिसका कारण केवल अज्ञान है, किन्तु तत्वज्ञान से वह चक्रभ्रम निवृत्त होती है, क्योंकि जगदीश्वर की आराधना स्वरूप जो वीज तिससे प्रगट ज्ञान अङ्कुरके विना इस अज्ञान मूलक संसारवृक्षके समूल विनाशकी और

कोई उपाय नहीं हैं, इसी समै मीमांसा-मतिने निवेदन किया कि, महाराज ! तत्वज्ञानी यह बात कहते हैं, कि पुण्यशील मनुष्योंके अनुष्ठान किये भये कर्मोंसे सन्तुष्ट हो देवता सहाय होते हैं, इससे कामदेवकी पराजयके अर्थ आप यतन करो, मैंने भी तुमारे हेत विष्णुभक्तिदेवी को सहाय किया है, क्योंकि, महामोह का प्रधान वीर कामदेव है तो प्रथम वस्तु-विचारके द्वारा ही उसको जीतना उचित हैं, तव विवेक बोले कि भला तो हम कामके जयकरने के अर्थ वस्तुविचारको भेजैं परन्तु हे वेदवती मिमांसा मति तुम वस्तुविचारको बुलाओ, विवेक की अनुमति पायकर मीमांसा-मति वहां से गमन कर किञ्चित् विलम्बके पीछे वस्तुविचारको साथले आयकर बोली कि महाराज ! क्या आश्चर्य्य है कि काम औ मोहसे इस जगत के सकल मनुष्य मोहित औ वञ्चित हो रहे हैं, देखो, उनको वस्तुविचारके विना सच मुच अधम वस्तुमे उत्तम का ज्ञान होता है अर्थात् रक्त हाड मास से वनी जो युवती की देह औ

स्तन केवल मांसके पिण्डे ऐसे ऐसे विचार करनेसे क्या कभी स्त्रियों के अङ्गकी सुकुमारता या सुन्दरता का सम्भव हो सकै है, एहो मोह के क्या क्या आश्चर्य्य कार्य्य हैं कि देखो जिस मोह महिमाके वशीभूत होय, इस प्रत्यक्ष सिद्ध रक्त मांस हाडचर्म्ममयी चित्र की पुतलीके समान कामिनी को, कमनीय इन्दीवर-नयनी गुरुतर नितम्बके भारसे अलस औ स्थूल उन्नत कठिन कुच कमल युगलसे शोभायमान तथा चारु कुटिल भ्रू चापसे विभूषित कमल-वदनी ऐसा ज्ञान कर निज अन्तःकरणसे मोह औ कामके विकार को प्राप्त हो, पण्डित जन भी उन्मत औ हर्षित हो, प्रीति स्तुति विनती करते हैं और अधिक क्या कहैंगे, देखो वही पञ्चतत्वसे निर्म्मित अस्थि मांस चर्म्ममयी सकल जीवों की देह है और वे बहुधा स्नान शौचादिभी नहीं करते नसुगन्ध द्रव्यका लेपही करते केवल तृण पत्र माटी का भक्षण करतेहैं; परन्तु तौ भी उनकी शरीर ऐसी अपावन औ दुर्गन्ध भरी नहीं है कि, जैसी नर नारी की

११

अपावन औ दुर्गन्धसे भरी है क्या आश्चर्य है कि, मनुष्य खाते पीते उत्तम उत्तम पदार्थ कस्तूरी केशर केवडा गुलावसे मिलीभई मिठाई औ नाना-प्रकारके व्यञ्जन दूध दही पान ईलाची आदि औ दिनमे दो तीन वार नहाते धोवते तथा चन्दनादि अनेक सुगन्ध लगावते परन्तु तौभी नव-द्वारसे दुर्गन्ध औ मल मूत्र ऐसे निकलते कि मारे दुर्गन्धके उन को अपनी नाक आपसे वन्द करनी परती है, परन्तु, वाह री! मोह की महिमा कि गन्ध औ पसीनासे भरी नारी की ऐसी भी देहसे यथार्थविचार करने वाले ज्ञानी पुरुषों को भी विराग न होकर और अधिक प्रीति ही होती है क्या करैं विचारे मोह महिमा के मारे दोषोंके पलटे सौन्दर्य्य आदि गुण-ग्रामहीं की भ्रम होती है, सो सुनो कि अद्भुत अज्ञानी जन अज्ञान दृष्टिसे नारीमे क्या क्या आरोप नहीं करते, देखो मुक्ता के हार गलेमे डार औ झनकीले जडाउ कङ्कन करमे पहिरावते तथा मणि-मय सुवर्णके अनेक प्रकार आभूषण औ रङ्ग रङ्गके उत्तम वस्त्र

उढाय मृगमद कुमकुम लगाय सुन्दर सुगन्ध-विशिष्ट फूलों की चित्र विचित्र माला पहिराय बिलक्षणशोभा कर फेर वही रूपको देख मोहित होते हैं ; परन्तु परम ज्ञानी तो उस नारी का नरकरूपही देखते हैं, क्योंकि वे परम ज्ञानी सकल वस्तुके भीतर बाहिरके जाननहार हैं, नारी को कनक चम्पक वरण जो चाहो सो कहो परन्तु, नारी मल मूत्र औ अवगुण का भवन, केवल नरक की निसेनी छोड और कुछभी नहीं है.

तबतो वस्तुविचार आकाश की ओर देख कर बोला कि, अरे पापी चण्डाल काम ! तूं निरन्तर मनोवर्ती होकर सकल साधु-जनों को व्याकुल करता औ ज्ञानी पुरुषों को भी ऐसे ही अभिमानी करता है कि, यह बाला हमारी अभिलाष करती औ यह चन्द्रमुखी मेरे पर कटाक्ष फेंकती तथा यह कमल नैनी पीन उन्नत कठिन उरोजों से हमको गाढ आलिङ्गन करनेकी इच्छा करती है ; अरे मूर्ख ! देख और सुन कि कौन तेरेपर कटाक्ष फेंके हैं

औ आलिङ्गन की अभिलाष करै है, अरे विन पूंछका पशु! तूं इस विषयसे कुछभी नहीं जानताहै तूं जिसको नारी कर मानता सो नारी नहींहै किन्तु सो अमूर्त पुरुषरूप परमात्मा है और मास चामसे वनी जो आकृति सोई नारी औ जडपदार्थहै और जो ज्ञानवान निरञ्जन निराकार चेतनहैं सो सर्व्वत्र समान है तो तेरा नारी की देहगत उनके साथ क्या प्रयोजन है बोल तो? अनन्तर मीमांसा मतिने वस्तुविवेक से कहा कि आवो अब हम इहांसे महाराज विवेकके निकटको चलैं, इतना कह मीमांसा मति औ वस्तुविवेक उहांसे कै एक पद चले तो वह मति वस्तु विवेकसे फेर बोली, कि देखो, ए महाराज! उद्विग्न-चित्त वैठे है तुम इनके निकट गमन करो, वस्तुविवेक सन्मुख जायकर बोला, महाराज की जै हो, मै वस्तु विवेक नाम आपको प्रणाम करता हूं, महाराज बोले कि, तुम हमारे निकट इस आसन पर वैठो, वस्तुविवेकने आसनपर वैठ निवेदन किया कि आप कुछ आज्ञाकर इस किङ्कर को कृतार्थ करिये.

राजा बोले एहो, वस्तुविवेक! सुने हो कि नहीं महामोहके साथ हमारी लडाई उपस्थित भई है? इस संग्राममे महामोहका प्रधान वीर, काम है सो उसका प्रतिद्वन्दी औ प्रतिपक्ष वीर हमने तुमको ठहराया है. वस्तुविवेक यह सुन उत्साहयुक्त हो बोला कि जो महाराजने हमको कामका प्रतिपक्ष वीर विचार किया इससे हमने अपने को धन्य औ कृतकार्य्य जाना, अनन्तर विवेकसे महाराजने पूछा कि किस अस्त्रविद्या औ शस्त्रसे कामको पराजय करोगे सोतो कहो, वस्तुविवेक बोला आः, महाराज जिसके फूलका धनुष औ पञ्च प्रकारा कुसुम वाण तिस कामके पराभव करने को भी विद्या औ शस्त्रका सन्धान है (केलेके वनको भी हंसियेकी धार) हम सकल इन्द्रीरूप द्वारों को एकवार ही दृढ अवरोधन करके काम को जडसे उखाड फेंकेंगे क्यो कि सकल इन्द्रियोंके वशीभूत करनेसे कामिनी का स्मरण नहीं होता, जो कदाचित् किसी प्रकारसे कामिनी के दर्शनकी घटना भी होय तौभी कामिनीका

सङ्गपरिणाम कहे अन्तको नीरस औ घृणा-जनक हैं, तथा उसकी शरीर हाड मास रक्त चाममय औ दुर्गन्धसे भरी ऐसर अनेक चिन्ता औ वारवार विचारसे चित्तका संस्कार कर, काम की असाधारण दूर्दशा करेंगे.

वस्तुविवेकके मुखसे इस प्रकार की युक्तिसे युक्त साधुवाद श्रवण कर महाराजने उसको वार२ धन्यवाद दिया, वस्तु विवेक फेर बोला कि देखो जहां निर्म्मल जलका प्रवाह वहरहा है ऐसा जो सकल मलनिकन्दन भागीरथी का तीर कि जहां श्वेत स्वच्छ शीतल शिला-विशिष्ट शैल औ हरे हरे घनछांह भरे दृक्षोंसे शोभित कानन औ वेदव्यास जी की शान्तिरस भरी कथा तथा साधुजनोंके सङ्गका जो सम्भव होय तो मांसमज्जामयी नरककी निसेनी नारी कहां और कामहीं वा कहां यह सत्यकर मानो.

हे राजन्! कामका प्रधान अस्त्र तो नारी है इससे नारीके जय करनेसे कामके सकल सहाय निरास होते तो काम स्वयं निष्काम औ भग्न-उद्यम होगा क्योंकि नारीके निरस

होनेसे चन्द्र चन्दन निर्म्मल रजनी मधुकरों की गुञ्जार धुनि उपवन क्रीड़ाकानन बसन्त-ऋतु गम्भीर धुनि गर्जती सजल मेघ-माला औ शीतलदिन कदम्ब कुसुम सुगन्ध सनी मन्द मधुर मलया-चल पवन औ शृङ्गार-रस आदि काम के, प्रियमित्र ए सब सुतरां पराक्त होते हैं, इससे अब और विलम्ब करने का प्रयोजन नही है, शीघ्र ही आज्ञा कर मेरे पुरुषार्थको देखिये, कि निरन्तर बाण वर्षाके द्वारा जैसे अर्ज्जुनने कुरु सेनाको जीति जयद्रथ का वध किया था तैसे हम भी निरन्तर वस्तुविचारसे शत्रु सेना को पराजय कर शीघ्र ही कामको वध करेंगे, महाराज परम सन्तुष्ट हो वोले कि तो तुम शत्रुसेना-जयके अर्थ यत्नपूर्व्वक गणेश करो, वस्तुविवेकने महाराज की आज्ञा औ अनुमति पाय प्रणाम कर नट-शालासे गमन किया, फेर महाराज विवेकने मीमांसामतिके प्रति आज्ञा किया कि तुम क्रोध की पराजयके अर्थ क्षमा को बुलावो, क्षमाने आयकर निवेदन किया कि, महाराज की जय हो, यह आपकी टेसी

क्षमा नाम मैं अष्टाङ्ग प्रणाम करतीहूं; फर कर जोर कर बोली कि देखो तरङ्ग रहित निर्मल गम्भीर समुद्रके समान थिर जो पण्डित जन तेभी हमारा ही अवलम्बन कर शत्रु जनोंके कटु वचन सहते हैं कि, जो वचन वैरी जन क्रोधरूप अन्धकारमें भयङ्कर कुटिल भौंह औ सन्ध्याकाल की सूर्य्य-किरणके अनुरूप जो अरुण वर्ण नैनकटाक्षसे नितान्त ही असहनीय हैं, यह कह फेर क्षमा बोली कि, महाराज! क्रोधके जय करने को हम एक ही समर्थ हैं, यद्यपि यम नियम ध्यान धारणादिका क्रोधके जीतनेमें प्रयोजन है तथापि हम अकेलीही बहुत हैं तो इनके सहाय लेने की अपेक्षा हमको कुछ नहीं है अर्थात् पुरुष को क्षमा करना सर्व्वदाई उचित औ हित है क्योंकि क्षमा परमक्षेम करने वाली है, तब विवेक बोले कि हां जाना, कि क्षमा तुम क्रोध को जीतोगी सन्देह नहीं, फेर अतिप्रसन्न हो क्षमा कहने लगी कि आपके श्रीचरणों की कृपासे महामोह को भी जय कर सकती

हौं तो उसके अनुचर क्रोध का जय-करना कितनी बात है, देखो जैसे भगवती श्री दुर्गा-देवी जी ने परम प्रचण्ड क्रोधमूर्त्ति महिषासुर को वध किया था, तैसेही मैंभी क्रोधको शीघ्र संहार करोंगी कि जो क्रोध वेदाध्ययन देवयज्ञ पितृयज्ञ औ तप आदि धर्म्म कर्म्मका अकारण प्रतिवन्धक है, तव विवेक वोले कि भला तो उसके संहार की क्या उपाय है सो कहो, क्षमा वोली, सुनिये कि क्रोधी मनुष्यके सन्मुख हंसकर वोलना औ अपकारीसे प्रसन्नता प्रकाश करना कटुभाषीसे कुशल पूछना तथा ताडन कारी से निरपराध कथन इन सव व्यवहारों के करनेसे भी जो दैवात् कदाचित् किसी अवश चित्त मनुष्यके अनिवार्य्य महत् क्रोध उपस्थित होय तो,उसको धिक्कार छोड और क्या उपाय है परन्तु करुणा रससे आर्द्र चित्त मनुष्यके हृद-यमे किसी प्रकारसे भी क्रोधको उदय नहीं हो सकती, विवेकने क्षमाकी वडी प्रसंसा किया तो फेर भी क्षमा वोली कि, महाराज ! क्रोधकी प-राजय होनेपर हिंसा कटुवचन अहङ्कार औ

मत्सर आदि सब पराजित हैं, तब महाराज ने कहा कि तो हमने अब तुमको क्रोधकी पराजयके अर्थ नियुक्तकिया, यह सुन वहभी वहांसे हर्षित हो उस कार्य्यके करनेको चली गई.

तदनन्तर महाराज विवेकने लोभ की पराजयके निमित्त सन्तोष को आह्वान करनेके लिये मीमांसामतिसे कहा, उसने भी आज्ञा पाय सन्तोषके आनयनके अर्थ गमन कर किञ्चित्काल पीछे सन्तोषको साथले रङ्गभूमिमें आई; तो सन्तोष क्षणकाल चिन्ताकर हृदय हृदय कहने लगा कि इस मनुष्य लोकमें ऐसा कौन स्थान है कि जहां वृक्षों के फल न मिलें औ नदी तडागों का शीतल मधुर जल न मिले औ शय्याके अर्थ तृण लता कोमल पत्र न होंय तथा अपने उद्यमसे साक पात या मोटा मैहीं अन्न मनुष्य न उपार्ज्जन कर शकै, हाय तौभी अविवेकी लोग धनी जनोंके द्वारे जाय थोडे लाभके हेत दुर्वाद औ कटुवचन अर्द्धचन्द्र कहे कले धक्का आदि नाना सन्ताप सहतेहैं फेर आकाशकी ओर देख कहने लगा, अरे मूढलोभ! श्रवण कर,

तेरी यह वडी भूलहै, रे मूर्ख! पिपासातुर लोभ! तूं अति तुच्छ ओच्छी धनकी आशारूप मृग तृष्णाके समुद्रमे कितनीर वार न पडा औ तेरे मनवांछित कर्म्मका उद्योग भङ्ग नहीं भया, परन्तु तौभी तेरी प्रत्याशा की निवृत्ति न भई, और न तेरा हृदय खण्ड खण्ड हो विदीर्ण भया, तो जाना कि, तेरा चित्त पाषाण अथवा वज्रके तुल्य है. और देख कि, आशारूप पिशाची तेरे मनसे और भी एक चमत्कार विस्तार करती है कि, जो तूं निरन्तर इस प्रकार धनका ध्यानकरता है कि हमने यह धन लाभ किया है और इससे भी अधिक लाभ करेंगे औ फेर धनके द्वारा धन वढता ही जायगा; ठीक है परन्तु यह तूं नहीं जानता, कि महामोहरूप अन्धकारके वीच आशा स्वरूप पिशाची तुमको हठात् सर्व्व-ग्रास भोजन करैगी.

और यद्यपि तुमने अति कष्टसे वहुत धन सञ्चय किया. तथापि उस धनका अथवा शरीरका नाश होने पर फेर दोनो भी प्रकारसे वह धन क्या तुमारा है और यह तो निश्चय हो

होगा, भला, तुमहीं कहो कि धनकी प्राप्ति भली कि उसका नाश भला है. ? अधिक तो विचार कर देखो कि जैसा धनके नाशसे दुख होता, तैसा अलाभसे नहीं, फेर देखो इसके लाभ हानि औ रखने इन तीनो अवस्थामे भी परम दुख है, इससे वुद्धिमान ज्ञानी जन यथा लाभ सन्तोषसे सन्तुष्ट हो उस यथालाभसे धर्म्म कर्म्मकर खायपी देले इस संसार मे सुखी औ निश्चिन्त रहते अन्तमे मनोरथ सिद्ध औ विन शोचके उत्तम गतिको आनन्दसे चले जाते हैं और नहीं तो धनजनकी चिन्तासे गोड घिंस घिंस कर रोय रोय मरके भूत पिशाच किम्बा अधम जोनियोंमे जन्मले नानादुख औ चौरासी भोगते हैं, हाय वडे कष्टकी वात है कि जान वूझ कुंआमे गिरना औ अपने हाथ कुल्हाडी अपने पगमे मारना.

और देखो, कि तुमारे मस्तकके ऊपर मृत्यु वार वार नाच रही है और जरा अवस्थारूप भयानक काल-भुजङ्गिनी तुमको दर्दुरके समान ग्रसे भई प्रतिदिन ग्रास कररही है और

पुत्रादि परिजन कुटुंबी सब गीध चील्ह शृगाल के तुल्य तकरहे हैं कि कबमरैं और हम सब खांय औ उडावैं, इस हेतुसे तुम अज्ञानरूप प्रचण्ड वायुसे उठी जो रज तिससे भरी अपनी शरीर औ नेत्रोंको ज्ञानरूप जलसे प्रक्षालन कर सन्तोषरूप अमृतसागर के आनन्द रस-रूप जलपानसे धनाशारूप पिपासा को दूर कर सुखसे अपने बाकी दिन काटो.

इसी सभै मीमांसामतिने सन्तोषसे कहा कि, यही महाराज हैं तुम इनके निकट गमन करो, सन्तोषने निकट जाय जयशब्द पूर्व्वक निवेदन किया कि महाराज! सन्तोष नाम मै आपको प्रणाम करता हूं, भला आवो, इहां बैठो यह कह कर विवेकने उसको अपने पास बैठाया तो सन्तोष बोला कि महाराज की क्या आज्ञा है, तब महाराज विवेकने कहा कि सन्तोष! तुमारा पराक्रम हम जानते हैं इस से विलम्बका कुछ प्रयोजन नहीं है तुम लोभ की पराजयके हेत शीघ्र वाराणसी को गमन करो. सन्तोष आज्ञा अङ्गीकारकर कहने लगा

कि जैसे श्रीरामचन्द्रने त्रिभुवन-विजयी देव द्विज हिंसक राक्षसाधिपति दशमुख रावण का वध करके जयकिया तैसे ही मैभी इस त्रैलोक्य विजयी अवशीभूत वक्रमुख भूत तुल्य लोभ को शीघ्रही जय करके चूर चूर करूंगा.

इतनी वात कह वह रङ्गस्थानसे प्रस्थान कर चला गया, तिस पीछे विजयके प्रस्थान की शुभ मुहूर्त्त ठहराय एक गणकने रङ्गभूमिमे आय यह निवेदन किया कि महाराज यात्रा की मङ्गलवस्तु सव तयार हैं इससे अव वाराणसी को यात्रा करिये लग्नठीक आयकर प्राप्त भई है, महाराजने कहा कि तो सेनापतियोंको चलने की आज्ञा देउ दैवज्ञने आज्ञा अङ्गीकार कर जों प्रस्थान किया कि तोहीं नेपथ्यके मध्यसे वडा कोलाहल शब्द उठा कि जिनके गण्ड-स्थलसे गिरती भई मदधारा की सुगन्धसे भ्रमर के झुण्ड उन्मत्त हो कमल कुल कचनार किंशुक वकुल कर्णिकार चम्पा चंबेली मल्लिका जूही गुलाव आदि फूलोंको छोड आय आय मस्तकों पर झनकार करते हैं ऐसे गजोंपर गद्दी हौदा

अम्बारी कसके शीघ्र तयार करो, और पवनसे भी अधिक वेगवाले सुन्दर सुरङ्ग तुरङ्गमोंको उत्तम रथोंमे जोतो, तथा जो दिग्मण्डलके वीच वाणोंके द्वारा आकाशको छाय औ झर लगाय सकते ऐसे पैदर सिपाही तिसके पिछू गमन करें और सवसे आगे झार असवार वार धरी नङ्गी तरवार धारण करके चलैं.

महाराजने यह कलवल शब्द श्रवण कर, पासवर्ती क्षत्रियों को आज्ञा किया कि तो हमभी अव मङ्गल करके प्रस्थान करें तुम युद्ध-का रथ तयार कर सारथी को लेआने की आज्ञा करो, सारथीने रथलाय रङ्गभूमिमे उप-स्थित हो निवेदन किया कि चिरञ्जीवी! यह रथ आय प्राप्तभया आप इसपर आरोहण करिये. महाराज विवेक उस रथ पर चढे औ सारथीने रथ वेगसे हांका कि इतनेमे काशीपुरी देख पडी तो सारथी ने निवेदन किया कि महाराज देखिये यह सनमुख निकटही त्रिभुवन पावनी त्रिनयन की मनभावनी वाराणसी सघनवनल-सी धनुषसी देख पडती है कि जिस वाराणसीमे

चन्द्र-प्रभाके समान धवल धामोंके ऊपर लहराते भये ऊंचेर श्वेत पताकोंकी पांती शरत कालके निर्मल मेघोंके मध्यमे दीपमान विद्युत-लताके समान शोभायमान होती हैं.

किञ्चत् दूर और गमन कर सारथी फेर बोला कि वाराणसीके प्रान्त कहे आस पास जो उपवन तिनमे घन छांह वृक्षोंके बीच बीच अनेक प्रकारके सुगन्धी फूलोंसे मकरन्द कहे पुष्पकारस लेलेकर जाते जो भ्रमरोंके झुण्ड सो मानो यात्री मनुष्योंके पाप पुञ्ज भयानक भयसे भागेजाते हैं, और सुरधुनीके निर्मल सलिलसे शीतल औ पुष्प परागकी सुगन्धसे गन्धयुक्त वायुके द्वारा डोलती जो लता औ डाली सोई भुजा, औ मधुकर धुनि सोई शब्द तथा श्वेत कुसुम रूप विभूतिसे भूषित सकल द्रुम मानो विभूति धारण कर स्तुति पाठ पूर्व्वक भुजा उठाये शिव भक्तोंके तुल्य नृत्य करते हैं.

तब महाराज विवेक आनन्दसे बोले कि जैसे तत्वज्ञान मुक्तिको आकर्षण करै तैसे ही तमोगुणके नाश हेतुसे आलामे उत्पन्न जो

आनन्द तिसके विधान करनेवाली यह काशी मुक्ति दासी हमारे चित्तको आकर्षण करती है कि जहां श्री गङ्गाजी फेनके द्वारा कुटिल चन्द्रकलाको उपहास करतीभई काशीके कण्ठमे लगी अर्द्धचन्द्राकार मुक्ता हारके तुल्य शोभा धारण करती हैं. फेर सारथी बोला कि देखिये यह अनादि विष्णु भगवान का पवित्र स्थान है जो सुरधुनिके मध्यस्थान का एक अलङ्कार विशेष है वह देव विवेक परम आनन्दहो बोले कि एहो सारथी इन महादेवको पुरातन पण्डित वाराणसीके अधिष्ठाता कहते हैं औ काशीमे शरीर त्याग कर पुण्यशील जन महादेवमे लीन होते हैं, इतनेमे सारथी फेर बोला कि महाराज! देखिये देखिये ए काम क्रोध लोभ आदि सब आप को देख कर काशी से भागेजाते हैं महाराज बोले कि भला चलो अब हम काशीमे प्रवेश कर भगवान अनादि केशव को प्रणाम करें, यह कह रथसे उतर उन भगवानके दर्शन कर अति परसन हो स्तुति पाठ करने लगे, कि

हे भगवन् जिस आपने तीनलोकके हितके हेत प्रथम अति पीनशरीर मीनरूप धारण कर वेदकी रचा की और देव दानव दैत्य सब मिल कर अमृतके कारण चीर समुद्र मथन के समै मन्दराचल मन्थान जब न संभारसके तब आपने कूर्म्मरूपहो निज पीठ उसके नीचे की और राजा वलीके छली वामनरूप हो त्रैलोक्य की राज्य राजा इन्द्रको दी और हिरन्याचने इस धराको लपेट कर जब थीसतरे धरा तो महा वराह बन उसका उद्धार किया और हिरण्य-कशिपुने प्रहलादके मारनेको जो खड्गली तो नृसिंह अवतारले उसका पेट फाड निज भक्त को बंचाया और परशुरामरूप धर एकईस बार निःक्षत्र कर भभार उतारा और रामरूप हो रावणको मार देव मुनियोंको अकण्टक किया और श्रीकृष्णरूप धारि कंशादि दुष्टोंको मारि भक्तोंको सुख दिया और बुधरूप धर दुष्ट दैत्योंको वेद मार्गसे भ्रष्ट कर बौद्धमत चलाया और कलिमे कलंकीहो म्लेच्छोंका नाशकरोगे

जब जब धर्म्मकी हानि भई तब तब आप अव-
तारले उपकार करतेआये और अबभी करोगे,

इति चतुर्थ अङ्क ४।

पञ्चम अङ्क।

तिसके अनन्तर श्रद्धा रङ्गस्थानसे आय कर कहने लगी कि हां यह उपाय उपयुक्त है क्यों कि जैसे प्रबल वायुके वेगसे ताडित तरु समूहो के परस्पर सघर्षणसे प्रगट जो अग्नि सो सकल वनको दग्ध करै तैसे खलुतासे प्रगट जो क्रोध सोभी जाति औ कुलका नाश करैहैं, फेर पीछे रोदन कर करके कहने लगी कि यह क्या आश्चर्य्य है कि बन्धु विनाश हेतुसे प्रगट जो दारुण शोक अनल सो हमारे अन्तर हृदयसे शान्त नहीं होती है देखो यह विवेकरूप सै कडों जल धारोंसे भी नहीं बुझती है, विशेष

से तो यद्यपि समुद्र नदी पर्वत पृथिवी औ चन्द्र सूर्य्य आदि सबका निश्चयसे नाशहोगा तो जीर्णतिनके के तुल्य जो लघुजीवन जीवगण विचारे तिनकी मृत्युका होना क्या आश्चर्य्य है तथापि बन्धुविनाशसे प्रगट जो कोई अकथनीय विषसे भी विषम प्रबल शोकानल सो हमारे हृदय को बार२ दग्ध औ विवेक तथा ज्ञानको समूल ध्वंस कर रहा है.

फेर देखो कि क्रूर स्वभाव जो ये महामोह प्रभृति भ्रातृगण तिनके नाश होनेसे हमको ऐसे दुखका अनुभव होता है, कि मानो विषम शोकानल प्रज्वलित हो मेरे मर्म्मका छेदन औ देहका शोषण तथा अन्तरात्माको दहन करता है, फेर क्षणएक चिन्ता कर करुणासे बोली कि हमको विष्णु भक्ति देवीने यही कहाथा कि हम वाराणसी त्याग कर भगवानके शालग्राम क्षेत्रमे कुछ काल वास करैंगी सोई अब इस काशीमे हिंसा औ युद्धका उद्यम देख, प्राय भाग गईहै जो होय,तुम हमारे निकट आगमन कर सकल वृत्तान्त जानागी, इससे अब हम विष्णु-।

भक्ति देवीके समीप गमनकर इस युद्धका सकल वृत्तान्त उनसे निवेदन करैं.

इतना वात कह औ कुछ दूर गमनकर अवलोकन पूर्व्वक उनसे विचारकिया कि यह तो चक्र तीर्थ है जिस तीर्थमे अपार संसार सागरके पार जानेकी तरणीके कर्णधार श्रीमान भगवान नारायण स्वयं कहे आप विराजमान हैं. तिस पीछे हरिको प्रणामकरके देखा कि महामुनि जनोंसे उपासना किई जाती भई यही देवी विष्णु भक्ति सान्तिके साथ कोई मन्त्रविचार कर रहीं हैं तो इसी समै हमभी इनके निकट गमन करैं. इसी वीचसे विष्णु भक्ति औ शान्ति रङ्गस्थलसे प्रवेश कर, शान्ति वोली कि हे देवी विष्णु भक्ति ! हम आज तुमको किस कारणसे अत्यन्त अधिक चिन्तासे व्याकुल देखती हैं, विष्णु भक्तिने उत्तर दिया कि एहो वच्ची शान्ति! हमारा हृदय अत्यन्त चञ्चल होता कि जिसमे वडे वोरके भी प्राण नाशकी संशय है ऐसा जो यह महा संग्राम तिसमे महावली महामोहके विपक्षसे युद्धके हेत खडे जो विवेक तिनका

क्या वृत्तान्त है सो कुछभी हम नहीं जानती हैं इससे हमारे मनमे बडी चिन्ताहै.

शान्तिने कहा हे देवी चिन्ता क्या है तुमं जो दया करो तो महाराज विवेक की अवश्य ही जय होगी, विष्णुभक्ति बोली एहो यद्यपि अपने जनों का मङ्गल प्रत्यह देखपडता है तैभी सुहृद जनोंके मनमे सदा अनिष्टही की शङ्का उठती है, विशेषसे तो बहुत दिनभये श्रद्धाके नहीं आनेसे मेरे मनमे सन्देह होती है, इतने मे श्रद्धा निकट आय कर बोली कि देवी विष्णु-भक्ति मै श्रद्धा आपको प्रणाम करती हूं विष्णु-भक्ति बोली कि आव आव सुखसे आई, उसने उत्तर दिया कि हां देवी! आपकी दयासे तिस पीछे शान्तिने भी निजजननी श्रद्धाको देखके प्रणाम किया उसने भी गलेसे लगाय लिया. तिसके अनन्तर विष्णुभक्तिने श्रद्धाको पूछा कि काशीमे युद्धका क्या वृत्तान्त है, श्रद्धा हंसकर बोली कि प्रतिकूल आचरण करनेवाले महा-मोहादिकों को यथोचित फल मिला. उसके मुखसे यह सुन विष्णुभक्ति बोली कि तो हमको

वह समाचार विशेषरूपसे सुनाओ, श्रद्धा कहने लगी कि हेदेवी तुम जिस समै काशीमे अनादि केशव देवके मन्दिरसे चलीआई तो सूर्य्योदयके अनन्तर हमारी औ महामोहकी सेना जय औ टंकार शब्दसे बुलायेजाते जो अनेकर वीर तिनके अति घोर-सिंहनादके द्वारा सकल दिशों के मध्यवर्त्ती मनुष्य-जनों के कान बधिर होगये और अति वेगवान औ चञ्चल तुरङ्गमों की टापों के द्वारा छुन्न महीतलसे निरन्तर उडती जो रेणु तिससे गगन-मण्डल ऐसा आ-छन्न भया कि मानो मेदिनी भयके मारे आकाशको भागचली औ जिनके कर्णरूप ताल पत्रोंसे उडाये जाते भ्रमर समूह ऐसे मत्त मा तङ्गोंके सिन्दूरलिप्त अरुण कुम्भों की लालिमासे मानो सन्ध्या समैका अरुण आकाश रक्तभरी पृथिवीसा प्रकाश कर रहाहै और प्रलयकालके मेघोंकी घटाके गम्भीर गर्जनके तुल्य कठिन कोलाहलसे भरी उस भयानक सेनाके बीचमे महाराज विवेकजीने न्यायशास्त्र को अपनी ओरसे दूत बनायकर पठाया था,

दूतने जायके महामोहसे कहा कि एहो सुनो महाराज विवेक की यह आज्ञा है कि तुम अपने अनुचरोंके सहित विष्णुमन्दिर पवित्रनदी तीर औ पुण्यवन तथा महात्माजनोंका मन इन सब स्थानोंको त्यागकरके म्लेच्छ देशको शीघ्र चले जाउ नहीं तो हमारे हथियारों से छिन्न-भिन्न तुमारे अङ्गोके रुधिर औ मांससे भरेभये मुख ऐसे सियार तुमारा रुधिर पानकर तुमारी जय पुकारैंगे. ऐसे कटुवचन सुन विकटाकार टेढी भौंह कर अति क्रोधसे महामोह उस न्याय दूतके प्रति कहनेलगा कि तो वह हत-बुद्धि विवेक इस अविवेक औ अनीति का फल अच्छी तरह भोग करैगा इतना कहकर फेर युद्धके हेत प्रथम पाखण्ड औ पाखण्डी सहित पाखण्डशास्त्रोंको प्रेरणा किया कि इसी बीचमे इन्दु, कुन्दके तुल्य धवलवर्ण श्वेत उत्पल एक करतलमे धारणकिये वाग्देवता सरस्वती, वेद उपवेद वेदाङ्ग औ धर्मशास्त्र पुराण इतिहास आदिसे विभूषित आयकर हमारी सेनाके सन्मुख प्रगट भई तो वैष्णव

शैव सौर शाक्त आदि सकल शास्त्र आय कर सरस्वती देवीके निकट उपस्थित भये.

तिसके पीछे पूर्णचन्द्रवदना मीमांसा, ऋक यजुर साम नाम वेदत्रयरूप तीन नैन धारण किये औ सांख्य पातञ्जल वेदान्त आदि शास्त्र के सहित तथा न्यायशास्त्ररूप सहस्त्र-बाहुके द्वारा दिग्मण्डल को प्रकाश करती दूसरी कात्यायनीसी युद्धोत्सव की लालसासे आयकर सरस्वतीके समीप स्थिरभई यह सुनि शान्तिने श्रद्धासे पूछा कि माता! स्वभावहीसे परस्पर विरोधी जो श्रुति पुराण शास्त्र सो किसप्रकार से एकत्र औ एकवाक्यताको प्राप्तभये, श्रद्धाने कहा पुत्री (एक वंशमे जन्मे जो सकल जन ते परस्पर वैरभाव को प्राप्त होके भी जो अपसमे किसी को दुसरेसे पीडित देखैं हैं तो तिस समै सब एक होजाते अर्थात् तत्त्वविचार करनेवाले के आगे शास्त्रोंका परस्पर विरोध नहींहै, देखो उत्पत्ति औ नाशरहित सदा थिर एक रस जो-तिरूप जो परब्रह्म तिसको सत्त्व रज तम इन तीनगुणो के क्षोभसे कोई ब्रह्मा कोई विष्णु कोई

महादेव कहकर नानाप्रकारसे स्तुति करते परन्तु जैसे अनेक पथगामी जल एक समुद्रही मे जाते तैसे वेद शास्त्र औ साधुवादसेभी एक परब्रह्महीं गम्यमान होता है.

विष्णुभक्तिने श्रद्धासे पूछा कि तिसके पीछे फेर क्या भया, श्रद्धा बोली कि हे देवी फेर तो दोनो ओरके मुखियार वीर औ सेना का परस्पर ऐसा तुमुल भयानक निरन्तर संग्राम होनेलगा कि पृथिवी पर अन्धकार छायगया और नानाप्रकार अस्त्र शस्त्रसे विदीर्ण ऊंचे, ऊंचे उन्मत्त-मातङ्गरूप पर्व्वतोंसे निर्झरके समान निर्गत रुधिर की नदियोंमे श्वेत चत्ररूप राजहंस तैरतेसे बहचले औ मास मज्जारूप पङ्कसे पङ्किल कहे चहलारी हो उठी और कङ्क गीध काक शृगाल आदि मांसभची जीव सकल मण्डराने लगे तो स्वपक्ष औ परपक्षके परस्पर विरोधी प्रथम बौद्धशास्त्रसे प्रेरित चार्व्वाकमत खण्ड खण्ड हो नष्ट भया पीछे बौद्ध शास्त्रभी निर्मूलहो वेदान्त-शास्त्ररूप समुद्रसे मग्न होगया औ बौद्धजनभी सिन्धु गान्धार

पारसीक मगध अङ्ग वङ्ग कलिङ्ग आदि जो म्लेच्छदेशके तुल्य देश हैं तहां तहां जायकर छिप रहे और पाखण्ड औ दिगम्बर तथा कपाली आदि भागकर नीचनिवास पाञ्चाल मालव आभीर औ आनर्त तथा सागरके प्रान्तमे जाय कर लुकरहे और न्यायानुगत मीमांसा शास्त्रके मारे जर्ज्जरीभूत तर्कशास्त्र भी दिगंवरादिकोंके पीछेलगे चुप चाप भगे चले गये.

विष्णुभक्तिने पूछा कि फेर क्या भया तब श्रद्धा बोली कि कामिनी की शरीर रक्त मांससे बनी अति अपावन औ दुख-भवन है ऐसे ही विचार करनेसे काम भी हतभया औ क्षमाने क्रोध कठोरवचन हिंसा आदि को नाश किया अनसूयासे मद मत्सर भी मारे परे, ये समाचार सुन विष्णुभक्ति आनन्दहो बोली कि बहुतही अच्छा भया भला मोहकी क्या दशाभई सोतो कहो श्रद्धाबोली कि देवी! मोहभी योग व्याघातकके सहित किसी ठौर जाय गुप्तहोरहा है, तब विष्णुभक्ति बोली कि प्रथम तो वही सकल अनर्थ का हेतु है तो

उसकी उपेक्षा छोडना अति अनुचित है क्यों कि जो नर अपनी विजय औ अचल लक्ष्मीको चाहै तो बुद्धिमान पुरुषको उचित हैं कि ऋण औ शत्रु तथा अग्नि व्याधि इन को लघु-जानि शेष न छोडै क्योंकि ये फेर भी वढते हैं.

भक्तिने पूछा भला मनका क्या वृत्तान्त है श्रद्धा बोली कि देवी! सो मन पुत्र पौत्र प्रपौत्र आदि का मरण-वृत्तान्त श्रवणकर अति शोकसे शरीर त्याग करने को उद्यत है तब विष्णुभक्ति हंसकर बोली कि ऐसा होय तो हम सब कृतार्थ भई हैं औ आत्म भी परम वैराग का अवलम्बन कर चुके किन्तु उस दुरात्मा मोहका मरण कसे होगा सो चिन्ता वाकी है.

तब श्रद्धा बोली कि तुमारे प्रबोधरूप चन्द्र उदय होने की अभिलाष होनेहीं से मोहका नाश है विष्णुभक्ति बोली भला सोई होय, तो हम वैराग्य की उत्पत्तिके निमित्त वेदान्तशा-स्त्रको प्रेरणा करैं ऐसीर वातें कर विष्णुभक्ति प्रभृति सब नटशाला से चलीगई, तिसपीछे प्रवेशक आयकर बोला कि महाराज! मन

औ सङ्कल्प दरवाजे पर आयकर खडे हैं, फेर मन औ सङ्कल्प नटशाला मे प्रवेशकर मन आंसूभर शोच करने लगा कि हाय पुत्र तुम सब कहां चले गये कोई कुछ उत्तरभी तो देउ हे राग द्वेष अहङ्कार मत्सर आदि तुम आय कर एकबार गलेसे तो लगो देखो हमारी शरीर सूखती औ अङ्ग सब शिथिलहोचले हा दइ अनाथ हम को अब कोई बातभी नहीं पूछता है और असूया आदि मेरी कन्या सब कहां गई और मन्दभाग्य अभागी जो मै तिसकी आशा तृष्णा प्रभृति पुत्रवधू सकल को भी इसकाल काल‍ने आयकर हरलिया इससे मेरा हृदय अति व्याकुल होरहा है. देखो पुत्रादिके विनाशसे प्रगट जो शोकरूप ज्वर सो मेरी देहमे व्यापकर विष अग्निके स- मान दग्धकरता औ ज्ञान विचारका लोप तथा हठात् प्राणका नाशकरता है, इसी प्रकार प्रलाप औ रोदन करते करते मन मूर्छागत हो भूमिपर पतित भया, तदनन्तर सङ्कल्प अति उत्कण्ठा से बोला कि हे महाराज ! शोक

परित्याग करो औ सावधान होउ, तब मनने संकल्पसे पूछा कि भाई ! इस दुख की अवस्था मे भी मेरी प्रियतमा प्रवृत्ति देवी काहेसे नहीं हमै समझावती हैं, संकल्पने उत्तर दिया कि हे देव अवतक क्या प्रवृत्तिदेवी जीवती है मैने सुना कि वह पुत्रादिकों का मरण सुन शोक की आगमे भस्म हो कब नहीं परलोक को गई, यह सुन मन अति दीन वचनसे विलाप कलाप कर बोला कि सर्व्वनाश भया अब क्या बाकी है मेरी तो जडही उखड गई, हे विधाता जो अब भी ए अधम प्राण न गये तो इनसे कठिन और कुछ न जानो, संकल्पने कहा महाराज ऐसे तुम काहे कातरहोते क्या तुम अज्ञान हो मन बोला हे संकल्प ! इसपर भी जो मेरा जीवन अब है सो केवल दुखभोगहीके हेत है इससे तुम अब शीघ्र चिता की रचना करो तो हम अनलमे प्रवेश कर इस शोकानलका नि-वारणकरें इसी समै व्यासदेव की सरस्वती कहे वेदान्त विद्या नटशालामे आयकर बोली कि भगवती विष्णुभक्तिने हमको यह आज्ञा देकर

पठायाहै कि तुम पुत्रादिके शोकसे व्याकुल जो मन तिसको प्रबोध देनेके हेत जाउ कि जिसमे उसको वैराग्य प्रगट होय सो यतन करो इतना कह मनके निकट जायकर बोली कि हे पुत्र मन ! तुम किस कारण ऐसे विकल हौ देखो उत्पन्न होनेवाले सकल विनाशी औ अनित्य हैं यह तुमने पूर्व्वहीं पुराण इतिहास औ शास्त्र पढकर जानचुके हौ देखो ब्रह्मा शतकल्प जीवी होके भी नष्ट होते औ इन्द्र चन्द्र सूर्य्य पञ्चभूत मुनि समुद्र पर्व्वत आदि जो जनम धारी हैं सब का नाश है परन्तु परमायु सब की जुदी जुदी हैं जब जिसकी आयबनी चल दिया तो क्या आश्चर्य्य है परन्तु तौभी मनुष्यों के मनसे शोक उत्पन्नकरनेवाला महामोह चणर्में उठताहै, विचारसे तो समुद्रफेन औ ज-लबुद्बुदके समान जो पञ्चभूत-रचित यह देह सो पञ्चत्वकहे मृत्युको प्राप्तही होती तो फेर उस बातमे शोक का क्या काम है और आत्मा जो देहसे भिन्न आकाशके तुल्य सबसे अलग औ सबमे देखा जाता, वह किसीसे कुछ सम्ब-

न्ध नहीं रखता है तो उसके साथ औ शरीर-हीके साथ क्या सम्बन्ध है कि जो आत्मा औ शरीरके वियोगमे रोते औ शोक करते हैं हां जीवन रहते कुछ अपना काम निकलता है इसवास्ते दुखकरना पडता तो क्या किसीके कामके लिये उसकी परमायू वढजाय और वह निजस्वभाव छोड अनित्य को नित्य समझै औ उसी झंझटमे पड़ारहैं तिसपर भी यह परमात्माके आधीन पराधीन है (वही कहावत है कि न कोई पछै न गूछै मै दूलह की चाची) देखो न तो नित्य पदार्थ का नाश होता और न अनित्य कभी रहने सकता है इससे कैसी चिन्ता औ काहेका शोक झूठा है यह सब लोक एक ब्रह्म हों तो नित्य औरसब अनित्य विनाशीहै देखो जो मनुष्य ब्रह्मसे भिन्न वस्तुको विनाशी जानते उन को शोकही वा क्या और मोहई वा क्या पदार्थ हैं

सरस्वतीके मुखसे ऐसे प्रवोध-वचन सुन, मन फेर वोला कि भगवती! निरन्तर शोकसे व्याकुल मेरे चित्तमे विवेक विचार का प्रचार

तो नही होता क्योंकि एक वस्तुसे पूर्णपात्रमे दूसरी वस्तु नही अमटतीहै जौलों वह खाली न होय. सरस्वती बोली पुत्र! शोक औ मोहका कारण केवल स्नेहहै सो सकल अनर्थो का मूल है, देखो प्रथमतो मनुष्य विफलताके बीजतुल्य विषम विषमय प्रिया नाम सम्पूर्ण क्लेश वृक्ष का बीज तिसको आत्मरूप भूमिमे बोवतेहैं सोई सकल दुखको बीज-भूत स्त्रीरूप बीजसे वज्राग्नि तुल्य स्नेहमय पुत्रादिरूप अंकुर प्रगट होते सोई वृक्ष हो शोकानल स्वरूप फल शीघ्र उत्पन्न करते हैं तो उन फलोंके भोगसे शरीर धीरे२ दग्ध होती रहतीहै तो इससे शोक की खानि इस संसार का छोडनाही अवश्यहै, यह सुन मन बोला कि देवी! सत्यहै परन्तु शोक अनलसे अब मै प्राण नही रख सकताहूं भला भया कि अन्त समे तुमारा दर्शन तो मिला.

तब सरस्वती बोली कि आपसे अपने प्राण देना यह अतिअनुचित तथा शास्त्रसे विरुद्ध औ आत्महत्याका दोष लगता है, देखो इन अपकारी स्त्री पुत्रादिके निमित्त तुमको शोक

क्या है तुमहीं अपने मनमे विचार कर देखो कि ये स्त्री पुत्र कौन किसके हैं और कहांसे आये फेर इनसे किसका उपकार भया औ करतेहैं तथा करेंगे अर्थात् इनसे कभी किसीका कुछ उपकार नहीं होता है अधिक तो इनसे अपकारही देखते हैं जो कहो कि ये सब संसारी सुखके हेत हैं तो सोभी नहींहैं देखो जिनके वियोगमे परमदुख उपजै क्या आश्चर्य्य है कि तिनके निमित्त मनुष्य नानाप्रकारके अनर्थ औ परिश्रम तथा दुख उठावते हैं और मनमे विचार कर देखो कि वही पापी महामोहादि तुमारे परिवार तुमको क्या क्या कष्ट औ कौन२ पाप नहीं करायचुकेहैं और देखो जिन पुत्र परिवारके निमित्त तुम कितनी नदी नहीं उतरे औ कितने पर्व्वत नहीं लंघन किये और बाघ सिंह सर्प आदि दुष्ट जीवोंसे भरे भयानक वन नहीं मंझाये और धनकी आशारूप प्रचण्ड पवनके वेगसे उडे उडे तुमने किस किस राजा औ धनीके दरवाजे पर धक्का नहीं खाये और उनके मुखरूप बांबीसे रसन

स्वरूप काली नागिनसे निकले जो वचनरूप विष तिनको अपने श्रवणके द्वारा पानकर तुम शिथिल ज्ञान औ अधमरेसे हो कहो कहां कहां नहीं लौटे पौटे मारे मारे फिरे और तुमारी अभिलाष का पूरा होना तो दूररहा केवल क्लेशमात्रही का भोग भया तिसपर भी निरन्तर हृदयमे वर्त्तमान प्राणके समान जो प्रिय तनय तिनका जो विच्छेद सो सर्व्वछेद से भी अधिक दुखदाई होरहा है देखोतो क्या कौतुक है, फेर सरस्वती बोली कि स्नेहमे कारण केवल महामोह है यही शास्त्र कहते हैं, देखो जिस वस्तुमे जितनी अधिक ममता हैं उतनाहीं अधिक उसके वियोगमे दुख भी होता है इससे ममताके दूरकरने की यतन मनुष्यको सदाही करना उचितहै और देखो इस शरीरसे कितने कितने कीड प्रगट नहीं होते कि जिन को मनुष्य यत्नपूर्व्वक निकाल कर वाहर करतेहैं फेर कीटके तुल्य जो पुत्रादि तिनमे मोहकी महिमासे स्नेहवद्धहो उनके

वियोगमे झूठे शोकसे अपनी शरीरका सोषण अज्ञानी मनुष्य वृथाही करते हैं,

मन बोला कि हे देवी! यद्यपि आपने जो कहा सो सत्य है तथापि ममतारूप पाससे छूटना अति कठिन औ दुष्ट है, इससे हे भगवती! आप कोई ऐसी उपाय जानती हौ कि जिससे ममतारूप मिथ्या ज्ञानसे प्रगट संस्कार औ स्नेहरूप कठिन जञ्जीरसे बन्धे विचारे अन्धे जीव छूटजांय, वह बोली पुत्र! ममतारूप बन्धनके खण्डन की प्रथम यही उपायहै कि उत्पन्न पदार्थका अवश्य विनाश है और वै अनित्य हैं इस बातका चिन्तन करना, फेर देखो इस बड़े संसारमे बार बार जनमते औ मरते कितने पिता औ कितनी माता कितने भाई बहिन पुत्र कन्या स्त्री होती आई है और चपलाकी चमकसे क्षणमात्र देखपड़ते पदार्थोंके समान तथा स्वप्न सुखके प्रमाण एक मुहूर्त्तमात्र मिथ्या स्थाई पुत्रादिकों के हेत बारबार दुख का करना कितनी बडी भूलहै तिसको ज्ञान-नेत्रों से देखो, ऐसे ऐसे सर-

स्वती के प्रबोध-वचन सुनकर मन बोला कि हे देवी! तुमारे प्रसाद से अब मेरा मोह दूर भया परन्तु तुमारे मुख-चन्द्र से विगलित निर्म्मल उपदेशरूप वचनसुधारस की धार से निर्म्मल मेरे हृदय को भी शोक की तरङ्ग, सङ्ग कर फेर मलिन करती हैं इससे शोकरूप असि प्रहार की वेदना का नाशक कोई उत्तम औषध दीजिये, सरस्वती बोली कि ज्ञानी पुरुष इसकी औषध अचिन्तनरूप छोड और कोई नहीं कहते हैं, तब मन बोला कि हे देवी आपने जो कहा सो सत्य है परन्तु जैसे मेघमे छन्न चन्द्र मेघसे बाहर होके फेर ढंक जाता तैसे हृदय भी शोकमुक्त हो फेर शोक से ग्रस्त होता है, सरस्वती बोली हे पुत्र! यह सब मनका विकार मात्र है इससे तुम अब शान्ति रस से मन देउ, तब मनने पूछा कि देवी! वह शान्तिरस कहां है तब सरस्वती ने उत्तर दिया कि हे वत्स यद्यपि यह अत्यन्त गोपनके जोग है तथापि आर्तजनके प्रति उपदेश करने से दोष नही हैं सो सुनो कि जो तुम निरा-

कार ब्रह्म की उपासना न कर सको तो नूतन जलधर के समान श्याम सुन्दर वर्ण सुवर्ण हार केयूर कुण्डल किरीट से भूषित जो हरि तिन का निरन्तर स्मरण करते करते परब्रह्ममे मन दे परम सुखी होउ कि जैसे प्रचण्ड मार्तण्ड की किरणो के तापसे सन्तप्त जन सुन्दर सरो-वर के शीतल सलिल मे स्नानकर के उसताप दूर कर सुखी होते हैं.

तदनन्तर मन एक चणभर चुपचाप चिन्ता कर बोला कि देवी! अब मै तुमारे प्रसाद औ उपदेशके अवलम्बसे शोक-सागर को उतर के पारभया यह कह सरस्वतीके चरणोंपर शिर धर प्रणाम किया, सरस्वती बोली कि अब तुमारा मन उपदेश के जोग भयाहै इससे और कुछ उपदेश करैं सो सुनो कि अन्तको विरस असार जो यह संसार तिसमे पिता पुत्र मित्रादि के मृत्यु होनेपर मन्द बुद्धि मनुष्यही शोकसे सन्तप्त होते हैं औ अपनी छाती तथा शिर भी पीटते हैं किन्तु ज्ञानी पुरुषों का जो

पिता पुत्रादिका वियोग सो शान्तिरस की कथा विस्तार के द्वारा वैराग्य को दृढ करै है.

तदनन्तर वैराग्य रङ्ग प्रदेश मे प्रवेश कर चण एक चिन्ता कर कहने लगा कि देखो जो विधाता रक्त मास हाड से बनी इस शरीर को चर्म्मसे आच्छादन कर सुन्दर न बनावते तो बाघ वृक काक गीध गीदड चील कीडे मकोडे आदि जितने रक्त मांस खानेवाले जीव हैं तिनसे कोई कैसे रचाकर सकते इससे यह हमारी देह सुन्दर औ लोक परलोक का साधन ऐसा अभिमान तथा इस को रचाके हेत यत्न करना अति उचित है, और देखो लक्ष्मी सर्व्वदा चंचल एक ठौर थिर नहीं रहती औ संसारी सुख तथा यह विरस देह अन्त को सकल आपद के आलयहैं और बहुत धन होने पर भी मृत्यु तो नही टरती वरन वह धन अनेक प्रकारकी मृत्यु का कारण होता है और कुटुम्ब के परिजन लोग सदा वडे भारी शोकके हेतु हैं तथा स्त्री निरन्तर अनर्थ का मूल हाय यह वडी भूल है कि घोरतर इस

संसार की अति दुर्गम कठिन राह मे अबुध लोग सततही निरत रहते हैं किन्तु चिन्मय कहे ज्ञानरूप परमात्मा की सुगम राह मे कोई कभी निरत होते नहीं.

सरस्वती बोली कि हे पुत्र देखो यह वैराग्य तुमारे निकट आया तुम इससे स्नेह औ सम्भाषण करो, तब मन बोला कि हे वत्स! वैराग्य तुम कहां हो, वह बोला कि पिताजी यह मै आपको प्रणाम करता हूं, मन आशीर्वाद देकर बोला कि पुत्र आयुस्मान होउ औ होः तुमको मैने जन्मग्रहण करते मात्रही परित्याग किया था अबआज हमारे भाग्य से मिले. तदनन्तर वैराग्य ने मनको आलिङ्गन किया तो मन बोला कि पुत्र तेरे मिलने से अब मेरा शोक दूर भया, तब वैराग्य बोला कि हे पिताजी! जैसे मार्ग के मध्यमे पथिक जनों का सङ्ग होता फेर अपनी अपनी राहलेते औ जल-प्रवाह मे तृण काठ वहते वहते एकट्ठे हो, फेर भी अलग अलग वहजाते तथा आकाश मे मेघ प्रगट हो, परस्पर मिलते औ

पुन: पृथक हो विलाते और जैसे नदी समुद्र के उतरने के हेत अनेक मनुष्य राही वटोही वणिक वैपारी एक साथ बैठ परस्पर हेत प्रीत की वातें कर फेर पार हो अपने२ इष्ट देश को चले जाते तो कोई किसी का नहीं तैसेही पिता माता पुत्र भ्राता भगिनी दुहिता वन्धु वान्धव औ स्त्री आदि सबों का जो परस्पर सम्बन्ध औ एकत्र वास सो चिरस्थाई नहीं है यह वात प्रत्यक्ष सिद्ध कहे आंखों देखपरती है तो इन के वियोग मे अशोक ज्ञानी मनुष्य को शोक करने का क्या प्रयोजन है,

वैराग्य के वचन श्रवण कर उसपर अनुराग पूर्व्वक मन सरस्वती से कहने लगा कि देवी! देखो वैराग्य ने क्या उत्तम वात कही है यही सत्य है क्योंकि देखो, वही नवयौवना कामिनी औ चन्द्र प्रभासे श्वेत यामिनी तथा मधुर मनोहर मधुकरोंकी झनकार औ सोई मत्त मधुकरों से आकुल कुसुमयुत वकुलवृक्ष के समूह की सौरभ औ प्रफुल्ल नवमल्लिका की मदगन्ध औ शीतल नीर सरोवर के तीर कदम्ब

वृक्षों की सुगन्धसनी मन्द मन्द चलती मलय मारुत ए सब जो कामके दीपन सो अब मेरे मन को मृग-तृष्णारूप समुद्रके जलतुल्य जान परते हैं अर्थात् भ्रान्तिमात्र हैं जिसहेतु से अब मन का जो तमो गुणरूप अन्धकार सो विवेकरूप प्रचण्ड दिनकर की किरणोंसे निवारण भया है. तब सरस्वती फेर कहने लगी कि हे पुत्र यद्यपि तुमारा अन्तःकरण विवेक से निर्मल भया है तथापि विना कोई आश्रम क्षण मात्र भी रहना अनुचितहै तो आश्रमोंमे सर्व श्रेष्ठ आश्रम गृहस्थाश्रम है और वह स्त्री के विना नहीं चलनेसकता इसहेतु आजसे निवृत्तिदेवी तुमारी धर्मचारिणी पत्नी होगी.

यह बात सरस्वती की सुन मनने मन मन मे कुछ लज्जासे अनमनहो, वह आज्ञा ग्रहण किया, सरस्वती फेर कहने लगी कि शम दम औ सन्तोष आदि तुमारे पुत्र चिरञ्जीव रहैं औ यम नियम प्रभृति मन्त्री तुमारी सेवाकरैं तथा विवेक भी तुमारी अनुग्रह से उपनिषद देवीके सहित युवराज पद भोग करैं और

तुमारे कार्य्य साधनके हेत देवी विष्णुभक्ति को पठाई, मैत्री आदि चारोंवहिन को तुम अनुनय विनय प्रसन्नता से करो, यह सुन आज्ञा शिर धर मनने अति हर्ष से सरस्वतीके युगल चरण को दण्डवत प्रणामकिया तो सरस्वतीने मनको निज करसे उठायकर यह वचन कहा कि मन तुम यम नियम आसन औ प्राणायाम आदि कों के ऊपर आदरपूर्व्वक दृष्टिकरो और उन सबके समेत आयुष्मान हो, अब साम्राज्य सुख भोगकरो, देखो तुम अब सुस्थ औ सुचित्त भये आत्मा भी अपने स्वभाव को प्राप्त होंयगे क्योंकि आत्मा नित्य औ सुखरूप होके भी तुमारे सङ्ग दोष से प्रगट जो पापकर्म्म तिसके वशहो देह हेतुक जन्म जरा औ मृत्यु को प्राप्त हो शोक मोहादि नाना दुखका भोग करते हैं.

और देखो वे आत्मा एक अद्वितीय होकर भी लौकिक बुद्धिकी वृत्तिसे शरीर भेदपूर्व्वक नानारूप प्रकाश मान होते हैं, जैसे एक सूर्य्य जलाशय की तरल जलतरङ्गो मे नाना देख पड़ते औ अनेक वारि-पूर्ण घटों मे नाना प्रति-

बिम्बरूप देखेजाते और जैसे मेघसे बरसाया जो आकाशका एक रस जल सो ऊख नीबू मिर्चा आदि उपाधि भेदसे मीठा खट्टा करुआ अनेक रस को प्राप्त होता तैसेही एकरस आत्मा भी उपाधि भेदसे भिन्न२ स्वभाव प्रतीत होता है, हे पुत्र मन ! जो तुम विषय-वासना से विरत होउ तो आत्मा भी विषयके सुख-साधन सकल व्यापार परित्याग कर अविच्छिन्न सुख सागरके प्रवाह मे निमग्न अर्थात् हम सुखी इत्यादि अभिमान से रहित होंय, जैसे निर्मल मुकुर मे अपना मुख प्रतिबिम्ब रूप से प्रकाशित होता तैसे अविद्या कहे अज्ञान स्वरूप ऐने मे आत्माभी प्रतिबिम्ब जीवरूप प्रकाश मान होता है. ए वचन सुन मनवोला कि हे देवी अब हम स्थिर भये हैं औ आत्मा भी नित्य सुख सागरमे निमग्न होंय, तो हे देवी अब हम जाति कुटुम्ब के स्नेह मोहादि को तर्पण करने के हेत नदीतीर को जांय यह आज्ञा लेकर वे सबके सब उस नट्शालासे चलेगये.

इति पञ्चम अङ्क सम्पूर्ण ५

अथ षष्ठ अङ्क ।

तिसके अनन्तर शान्ति रङ्गभूमिसे प्रवेश कर बोली कि हमसे महाराज विवेक ने यह कहा था कि हे पुत्री शान्ति ! तुम तो तावत सकल वृत्तान्त जानती हौ तथापि कुछ विशेष रहस्य कहे गुप्त बात श्रवण करो, कि काम क्रोध प्रभृति पुत्रों के विनाश भये पीछे सकल राज्यके ईश्वर हमारे पिता मन मोहके क्षीण होने पर फेर उनके मनमे वैराग्य उदय भये पीछे शान्तिरस प्रगट होनेसे अविद्या ममता राग द्वेष कहे प्रीति विरोध औ विषयों का अभिनिवेश यही पांच क्लेशसे रहित औ शान्तिरस मे निमग्न हो आत्मा सब प्रकार से तत्वज्ञान विस्तार करने को यत्न करतेहैं, इससे तुम अतिशीघ्र उपनिषद देवी को हमारे निकट आनयन करो, यह कह चतुर्दिक अवलोकन करते मात्र श्रद्धा को देख मनमे कहने लगी कि यह तो मेरी माता श्रद्धा है जो अति

हर्ष से अपने मन मनमे कुछ चिन्तन करतीसी सन्मुख रङ्गभूमि मे चली आवती है.

तिस पीछे श्रद्धा रङ्गभूमिमे आयकर कहने लगी कि आज चिरकालतक राजकुल को अवलोकनकर मेरे युगल लोचन चकोर मानो सुधाकरके सुधारससे शीतल औ परितृप्त भये हैं देखो जिस स्थलमे असत का निग्रह कहे दण्ड औ सम दम आदि साधुओं का संग्रह है उसी स्थानमे शान्तिके अनुजीवी जनोंसे जगत के पति आत्मा आराधना किये जाते हैं, इसी बीच मे शान्ति श्रद्धा के समीप आयकर बोली कि हे माता श्रद्धा! तुम मनमे क्या विचार करती भई किस स्थानको प्रस्थानकर चली हो, श्रद्धा बोली कि राजकुल के दर्शनहेत इहां ईतक आई हैं, शान्तिने पूछा कि माता! जगत स्वामी आत्माका मनके प्रति अब अनुराग किस प्रकारका है सो कहो.

श्रद्धाने उत्तर दिया कि दण्ड अथवा बध करने के जोग जनो पर मनुष्योंकी प्रीति जैसी होती आत्माकी भी मनके प्रति वैसीही प्रीति

जानो, अर्थात् आत्मा, अविद्या ममता राग द्वेष औ विषयोंमे आशक्तिरूप पङ्कलेशसे शून्य हो शान्तिरस के समुद्रमे निमग्न भयेहैं. शान्ति बोली तो क्या जगतके स्वामी आत्मा आप ही इस राज्यको नष्ट करेंगे, श्रद्धाने कहा हां ऐसी ही तो प्रतीति होतीहै परन्तु जो मन आत्माका अनुगत होय तो आत्मा स्वयं सम्राट कहे शुद्ध चैतन्य स्वरूप होंयगे. शान्ति बोली भला और भी एक बात पूछती हूं कि मायाके प्रति अब आत्माका कैसा अनुग्रह है श्रद्धाने उत्तरदियाकि निग्रहही जानो अनुग्रह की क्या बात है भला देखो तो निग्रहको छोड अनुग्रह का विषय क्या है क्योंकि सकल अनर्थ की हेतु भूत वी-जरूप जो माया सो सर्व्वप्रकार सकल जनों से त्यागकरने के जोग हैं आत्मा इस बात को निरन्तर जानते हैं, शान्ति बोली माता! तो अब उस राजकुल की क्या गति होगी.

श्रद्धाने कहा पुत्री सुनो राजसंसार अब ऐसा होगा कि नित्यानित्यविवेचना नाम जगत स्वामी की प्रणायिनी राजमहिषी होंगी औ

मुक्तीच्छा सहचरी तथा मैत्री आदि चारो बहिन परिचारिका कहे दासी औ वैराग्य सुहृद औ यमनियमादि मित्र तथा शमदमादि सहायक और मोह ममता संकल्प प्रभृति शत्रुगण विनाश को प्राप्त होंगे. शान्तिने फेर पूछा कि भत्ता धर्मके साथ अब आत्मा की कैसी प्रणय प्रीति है, श्रद्धाने उत्तर दिया शान्ति सुनो अब वैराग्य आदिके प्रगट होनेसे आत्मा इह लोक औ परलोक के भी सुख-संभोगसे विरक्त भये हैं इस कारण अब निःकाम आत्मा सकल पुण्य कर्मका भी अनादर करते हैं अर्थात् सकाम कर्मसे रहित भये हैं, जिस हेतु वे अब अधर्मसे प्राप्त होते जो नरकादि तिनके समान शीघ्र विनाशी जो धर्मसे मिलते स्वर्गादि उनसे भी भीत होते हैं और धर्म भी आत्माको मुक्तिकी इच्छा जानि अपने को कृतकार्य्य मानि आप हीसे आप आत्माको परित्याग किया है.

फेर शान्तिनें पूछा कि निजवर्गी क्रोधादि सहित तिरोभाव कहे छिपेभये महामोहादिकोंकी क्या गति औ वृत्तान्त है सो भी कहो,

श्रद्धात्रोली एहो पुत्री! महामोहने तैसी दुर्दशा अवस्था को प्राप्त होके भी आत्माके रोचन कहे प्रीति के अर्थ मधुमती नाम वेश्या के साथ वही उद्भट निज भट कामादिकों को फेर भी पठाया, अभिप्राय यह जानो कि जिस मे फेर आत्मा विषयाशक्त हो विवेक औ उपनिषद देवी की चिन्ता भी न करैं हेपुत्री! वै सब उन के निकट जाय, यह इन्द्रजालविद्या फैलाय कहने लगे कि हे प्रियतम तुम इहां आवो इस दिव्य रस रसायन को पान करो और इस सुन्दरी रमणी से सम्भोग करो, उस समै उन की ये बातैं आत्मा मानो सौ योजन से सुनता औ स्वप्नके समान देखता है, फेर अपने समान करने के हेतु देवता भी उस आत्मा की प्रतारणा कहे छल करते हैं कि हे पुरुष तुम इस लोक औ इस पुरी मे आवो इहां जन्म जरा मृत्यु आदि कोई उपाधि नहीं होती हैं,

और देखो इहां विविध वेश विलास औ उत्तमरूप लावण्ययुक्त तथा प्रणय प्रीति रीतु रस से भरी विद्याधरी मङ्गल मधुराई मनोहर

दिव्य वस्तु पाद्य अर्घ हाथ मे ले तुमारे समीप प्राप्त होने की आकांक्षा करती हैं, और देखो कनक वालुका निर्म्मला नदी औ विपुल जघनी कोमल कमल-वदनी सुचारु उन्नत उरोज शालिनी सुठि सुगन्ध सुमन-मालिनी दिव्य विलासिनी औ नील श्वेत पीत वरण विराजमान कनक कमल के समान कोमल कमल विकाशमान नाना सरोवरों मे स्नान तथा निज तपोवल से प्राप्त अमृतपान आदि सकल सुख भोग करो, हे पुत्री यह वृत्तान्त सुनकर माया अति हर्ष से वोली कि अति उत्तम भया और इस वात से मन को भी आनन्द है तथा संकल्प की उत्साह से यह ज्ञातहोताहै कि आत्मा को भी यह वात अवश्य ही संमत होगी.

श्रद्धा के मुख से इन वातों के सुनते ही शान्ति मलिन कान्ति भ्रान्तिमति होय अति खेद से खिन्नमन यह वचन वोली कि हा, धिक धिक फेर भी वही संसाररूप माया के जञ्जाल जाल मे आत्मा जायकर वद्धभये, तव श्रद्धा वोली कि पुत्री! नही नहीं ऐसा नहीं,

शान्ति बोली तो फेर क्या है सो हम को समझायकर कहो, श्रद्धा ने कहा आत्मा के पासवर्ती जो तर्क है सो इन तरो विघ्नकारी सब की ओर कोपसे अरुण-नयनकरके आत्मा से कहने लगा कि हे स्वामी! विषरूप विषय-आमिष का ग्रास ग्रहण करावने के हेत ये धूर्त संसार रूप सागर के विषयरूप विष से ज्वलदग्नि स्वरूप दुख के बीच तुम को फेर भी फंसाने की इच्छा करते हैं क्या आप ने यह बात जाना है कि नहीं यह सुनि शान्ति कुछ प्रसन्न औ हरी मन भरी भई तो श्रद्धा फेर कहने लगी कि पासवर्ती तर्क का यह सुन्दर उपदेश श्रवण कर फेर आत्मा बोले कि अब हम विषय रस से अत्यन्त विरक्त भये हैं सो सत्य जानो इतना कहकर उस मधुमतीनाम नायिकाको अनादर कर अपने निकट से दूर कर दिया.

तब शान्ति ने वारवार आत्मा को धन्यवाद दिया औ श्रद्धा से पूछा कि तुम अब कहां को जाती हो, उसने उत्तर दिया कि स्वामी ने आज्ञा किया है कि हम शीघ्र ही विवेक के

देखने की इच्छा करते हैं इस से अब हम महाराज विवेकके निकट को चलती हैं, शान्ति बोली महाराज विवेक ने उपनिषद देवी के लेआवने की आज्ञा हमको भी दियाहै तो चलो हम दोनो एकसाथही चलैं औ राजाज्ञा का प्रतिपालन करैं इतनी बात कह श्रद्धा औ शान्ति दोनो नटशाला से गमनकर अपने अपने काम को चलीं तो मार्ग मे उदासीन उपनिषद देवी को आवती देख शान्ति बोली कि सखी ! देखो इस मे महाराज विवेक का क्या अपराध है पापी महामोह के ए सब कर्म्म हैं क्योंकि मन औ संकल्प प्रभृति की सहायता से संसारी सुख मे प्रवृत्ति प्रगट होने के हेत उस दुरवृत्त मोहही ने तुम को महाराज के निकट से दूर किया था, हे देवी सुनो कुलीन स्त्री जनों का यही स्वाभाविक उचित धर्म्म है कि स्वामी जो कोई विपद मे परै तो अधिक प्रीति औ मन मुहजोहती रहैं इससे अब तुम अभिमान औ मानछोड़ स्वामी के निकट चलो औ उनको परम सुधा सागरमे

मगन करो जिस हेतु अब सम्पूर्ण शत्रुवों के नाशहोने से तुमारा मनोरथ परिपूर्णभया है, तब उपनिषद् बोली कि सखी आगमन करते समै मार्ग के बीच गीतानाम मेरी कन्या मिली थी उस ने कहा कि माता! तुम स्वामी विवेक औ श्वशुर आत्मा को प्रश्न उत्तरसे परम सुखी औ सन्तुष्टकरना तो तुमारे प्रबोधचन्द्ररूप पुत्र प्रगट होगा ऐसे ही कहते सुनते आगे उपनिषद् औ पीछे शान्ति चलीं कि इसी बीच विवेक भी श्रद्धासमेत रङ्गभूमिसे आयकर बोले कि श्रद्धा! देखो उपनिषद् देवीको ढूंढनेके हेत शान्ति गई सो अबलों नहीं आई श्रद्धाने कहा महाराज की आज्ञानुसार वह उस को लेकर आवती होगी मैने विष्णुभक्ति से सुना है कि तर्क विद्याके डरसे वह गीता के बीच मे छिपी है, अब आप आगमन करिये देखो आप की बाट जोहते भये आत्मा भी निर्जन स्थानसे अवस्थान कहे वास कर रहे हैं.

तब तो महाराज विवेक आत्मा के निकट आयकर यह बोले कि पिताजी हम आप को

प्रणामकरते हैं आत्मा बोले कि वत्स तुमारा जो यह प्रणाम करना सो व्यवहार शुद्ध औ शास्त्र विरुद्ध है क्योंकि तुम ज्ञानवृद्ध हो तो सत उपदेश करने के हेतु से तुमहीं हमारे पिता तुल्य हो देखो जब हम कामादिकों के वशीभूत हो तत्वज्ञानसे रहित भये थे तब प्रत्येक शरीर मे भिन्न भिन्न जीवाभिमानी हम को तुम ने उपदेश दिया था, फेर क्षण एक चिन्तापूर्वक अति हर्ष से बोले कि देखो विष्णुभक्ति देवी का क्या आश्चर्य महात्म है कि उनके प्रसाद से तृष्णारूप दृढ रज्जु बन्धन को छेदन कर अब हम ऐसे भयङ्कर अपारसंसार-सागरके पारको प्राप्त भये हैं कि जो संसाररूप समुद्र नानाविध क्लेश स्वरूप उन्नत तरङ्गोंसे दुस्तर औ ममता रूप चक्रावर्त्त कहे जलभवरों से अतिभीषण तथा कान्ता कन्या पुत्र मित्ररूप हिंसक भयङ्कर नक्र मकरादि महा क्रूर जन्तुवों के ग्रसने का आवास और जिस से क्रोधरूप वडवानल की जरनि का एक बड़ा भारी वास है,

तदनन्तर शान्ति सहित उपनिषद्द देवी

रङ्गभूमि से प्रवेश कर बोली सखी शान्ति ! देखो नीच स्त्री के समानजान चिरकाल से अकेली हम को जिसने परित्याग किया ऐसे जो कोई निठुर स्वामी तिन का मुख अब हम किसप्रकार से देखैंगी, शान्ति बोली देवी ! तुम तो सब जानता हौ भला तैसी विपद से ग्रस्त हो स्वामी उस समै तुमारे साथ कैसे आसङ्ग करसकैं, उपनिषद बोली कि एहो ! तुमने तो हमारी दुर्दशा नहीं देखा इसी से ऐसा कहती हौ सुनो विधिवसते विवेकने जब हमको त्यागा तो दुष्ट पाखण्डादिकों ने मेरी क्याक्या दुर्दशा नहीं किया, हाय हाय, सखी ! दुख की बात क्या कहैं विद्या रहित अविवेकी पाखण्ड अपने कार्य्यसिद्ध होने के अर्थ विना धर्म्मार्थके स्वकपोलसे रचित व्यर्थ अर्थ कीं कल्पनारूप तीव्र धार खड्गसे हमको छिन्न भिन्न जर्जरीभूत रस भाव रहित करके आप ही ब्रह्मज्ञानी औ धर्म्माधिकारी बन बैठा धन्यहै कालके माहात्मको औ धिक्कारहै उसकी पल्लवग्राहि पाण्डित्य को कि हत अवज्ञपात श्रवा आदि सब सामग्री वर्त्त-

मान है औ नानाविध कर्म्मकाण्डों की पद्धति औ पुस्तकें खुली हैं (अर्थात् कर्म्ममीमांसा की बहुतादृत औ ज्ञानमीमांसा कहे वेदान्त का सञ्चार भी नहीं) तो उन पुस्तकों के देखने से मैने अपने मनमें जाना कि यह कर्म्ममीमांसा मेरी वाक्य का अर्थ बूझैगी इससे इनके निकट कुछ दिन वास करैं यह विचार उस के समीप जो गई तो वह बोली कि हे कल्याणी ! तुमारा यहां आगमन करने का क्या अभिप्राय है तो मैने उत्तर दिया कि मै अनाथ तुमारे साथ कुछ दिन रहने की इच्छा करती हों तब उस ने फेर पूछा कि तुमारा इहां रहने का क्या प्रयोजन है, मैने कहा कि जिस से जगत की उत्पत्ति स्थिति औ विनाश होता है और जिसके प्रकाशसे यह जगत प्रकाशमानहै तथा जो जगत के समवायि कारण औ आश्रय औ पुनर्जन्मखण्डनके हेतु तथा द्वैतरूप अन्धकार दूर कर विरक्त यतीजन सर्वदा जिनको आदिपुरुष तत्वरूपजानतेहैं अर्थात् जिनका तत्वज्ञान परम पुरुषार्थ जो मोक्ष तिस का कारण है सोई नि-

रूपम घनआनन्दमय तेजरूप नित्य निरञ्जन निःक्रिय भूतमात्रके ईश्वर आदिपुरुष उनका कुछ प्रसङ्ग चलावने की इच्छा हम करती हैं.

यह सुन कर्म्ममीमांसा बोली कि, देखो जो कुछ करसकता सोई कारण होसकता है तुमने तो प्रथमहीं कहा कि पुरुष निःक्रिय है तो क्रियारहित पुरुष कैसे जगत का कर्त्ता हो सकता यह बात असम्भव है, और जो तुमने कहा कि आत्मा का तत्वज्ञान पुनर्जन्म हरने का हेतु सोभी मन से नहीं बैठता क्योंकि तत्वज्ञान के बिना भी अश्वमेध गङ्गादर्शन औ काशी मे मरण से भी मुक्ति कहा है, इतने मे शान्ति ने उपनिषद देवी को अपने साथ ले, विवेक से कुछ विचार करते भये आत्माके प्रति निवेदन किया कि यह उपनिषद देवी आपके निकट आय चरणों को प्रणाम करने की इच्छा करती है, आत्मा बोले नहीं२ उपनिषद तो तत्वज्ञान के दान हेतु से हमारी माता से भी अधिक हैं क्योंकि माता संसार बन्धन मे डूढकर बान्धती औ एतो उस

बन्धन का छेदन करती हैं, फेर आत्माने पूछा
माता ! आपने इतने दिनतक कहां वासकिया
सोतो कहो, तब उपनिषद बोली मैने इतने दिन
मठ देवालय औ अध्ययन-शाला आदिकों मे
मूर्ख वाचाल पाखण्डी जनों के साथ काष्ठ लोष्ठ
पाषाण के समान वास किया, आत्मा ने पूछा
क्या वै सब तुमारे गुन को नहीं जानते, उप-
निषद बोली हां गुनकी तो क्या बात है बरन
जैसे द्रविड औ करनाटक-देश की स्त्रियों की
भाषा के अनजान जन अपनी इच्छा से और
का और अर्थ कल्पना करैं तैसेही धूर्त वाचाल
लोग भी हमारी बाक्य का समीचीन सदर्थ
परित्यागकर कै मनमाना स्वकपोल-कल्पित
असत अर्थ अनर्थ की कल्पना करते हैं सो
केवल परधन हरणमात्र का कारण जानो और
सुनिये कि जब मै आप के निकट को आगमन
करती थी तो मार्ग मे कर्म्ममीमांसाको देखा कि
कृष्णाजिन अग्निकुण्ड समिधा होमकी सामग्री
सब वर्त्तमान है मैने पूछा कि इस कर्म्म
से क्या फल होता और मेरी भी इहां रहने

की इच्छा है तब वह वोली कि अश्वमेधादि यज्ञ करनेसे पुनर्जन्म हरण होता औ काशीसे मरणसे मुक्ति होती यह वात भी शास्त्र सिद्ध है और जो कहो कि तृण अरणी औ मणि के तुल्य अर्थात् जैसे तृण काठ औ पत्थर एपर-स्पर निरपेक्ष-रूप से अग्नि उत्पन्न करने के हेतु हैं तैसेही आत्म-तत्वज्ञान भी वाराणस्या दि मुक्ति मे कारण है तो यह वात काम की नहीं जिस हेतु अश्वमेध यागकी क्रिया मात्र करते ही जीव पुनर्जन्म छेदन कर मुक्त होता देखो जो पुरुष अश्वमेध यज्ञ कराता सो ब्रह्म हत्या आदि पातकसे मुक्त हो पुनर्जन्म से रहित होता है और गङ्गाजी के दर्शन मात्र ही से मुक्ति होती यह वात श्रुति कहे वेद औ पुराण मे प्रसिद्ध है तो तुमारी मत जो आत्म तत्वज्ञान विना मुक्ति नहीं सो सम्मत नहीं होसकता इस से इस स्थान से तुमारे रहने से हमारा क्या प्रयोजन है हां करी जो जीव सोई स्वर्ग नरक का भोक्ता है यह प्रसङ्ग प्रचार करनेकी कुछ इच्छा होय तो भलेही वास

करो, यह सुन विवेक हंसकर बोले कि धूम के अन्धकार से अन्ध मीमांसा कहे कर्म्मकाण्डी कैसे दुर्बोध हो कुतर्क करते कि जैसे स्वभावही से अचल अचेतन लोह चुम्बक के सन्निकट हो हलन चलन करै तैसेही विश्व के दिदृक्षु पुरुष से प्रेरित यह अचेतन माया जगत की सृष्टि करती है तो माया को स्वतः ईश्वरत्व नही किन्तु उसके प्रेरक पुरुषही को ईश्वरत्व सिद्ध होताहै सोतो तमोगुण से अन्धजन नहीं देखते हैं, देखो जगत का प्रकाशक जो ब्रह्म तिस के ज्ञान भिन्न मुक्ति की उपाय अन्य कोई नही है अर्थात् ब्रह्मज्ञान विना क्या कर्म्म औ क्या दान क्या तीर्थ किसीसे मुक्ति नहीं मिलती तो केवल यज्ञ मुक्ति का कैसे साधन है.

फेर यज्ञविद्या मीमांसा उपनिषदसे बोली कि सखी! तुमारे सन्निधान से हमारे शिष्य हत-बुद्धि हो कर्म्मकाण्ड मे आदर छोड देते हैं तो तुमारा इस स्थानमे रहना अनर्थ छोड हमारे किसी अर्थ का नहीं है इस हेतु से तुम अनु-ग्रह कर जहां जाती हो तहां को शीघ्र गमन

करो इहां तुमारा कुछ काम नहीं है यह सुन मैं फेर वहां से चली तो मार्ग में कर्म्मकांड की सहचरी श्रुति स्मृति पुराण की अनुगता दूसरी मीमांसा देख पडी कि उसके अनुयायी ब्राह्मणादि चारो वर्ण अपने अपने अधिकार संध्या उपासना जप, योग, याग, श्राद्ध तर्पण स्नान ध्यानादिकों में निरत हो कर्मकर रहे हैं, मैंभी उसी कर्म्म काण्ड-सहचरी की अनुचरी तुल्य निकट जाय प्रार्थना कर कुछ काल वसी औ वही ब्रह्मजीव का भेदभाव कहने लगी तब वह अपने शिष्यों से बोली कि यह लोकान्तर में फलभोगी जीवों की स्तुति करती है, इससे कर्म्मकाण्ड की उपयोगी है, तो रहने देउ इतने में कोई बडे मीमांसक बोल उठे कि नहीं नहीं यह जीवात्मा का स्तव नहीं करती किन्तु जीवसे भिन्न कर्म्मफलभोगरहित ईश्वरकी स्तुति करती है, इतने में कोई एक जीवात्मवादी मीमांसक बोल उठा कि लौकिक जीवसे अधिक ईश्वर नामक क्या कोई औरभी है, वह बोला हां

है परन्तु वह कर्म्म का कर्त्ता नहीं है किन्तु फल दाता है, सो सुनो कि अन्धता औ दर्शनशक्ति अर्थी औ दाता तथा आज्ञा करना आज्ञा देना औ सङ्ग असङ्ग आदि धर्म्म परस्पर विरोधी हैं, एककालमे एकनिष्ठ नहीं हो सकते इससे ईश्वरका स्वीकार अवश्य ही करना परेगा, और सोई जो जीवात्मा औ परमात्मा दोनो विहङ्गमरूप परस्पर एक एकका सहाई औ एक वृक्ष पर स्थाई हैं, परन्तु उनके मध्यसे जीव पक्व अश्वत्थफल-भोक्ता औ परमात्मा साक्षीरूप अर्थात् एक संसारी सुख दुःख भोगी औ दूसरा स्वर्ग नरकादि फलका दाता है.

आत्मा ने पूछा फिर क्या भया, उपनिषद बोली कि, फेर मै वहांसे भी चली तो कुछ दूर आय राहमे देखा कि वैशेषिक बिद्या औ न्याय विद्या तथा सांख्य औ पातञ्जल-विद्या अनेक पुरुषोंसे उपासना की जाती हैं, तिनमे वैशेषिकविद्या छः पदार्थ की कल्पना करती है, कि द्रव्यगुण कर्म्म सामान्य औ समवाय एक पदार्थ हैं, औ इनसे भिन्न अभाव पदार्थ का

कुछ प्रयोजन नहीं है, क्योंकि अभाव अधिकरणरूप है, और दूसरी न्यायविद्या छल जाति निग्रहरूप केवल सप्त पदार्थ दिनी तकत् रूप वाद जल्प औ वितण्डा को विस्तार करती है, तीसरी औ चौथी जो सांख्य औ पातञ्जल विद्या वे मूल प्रकृति औ पुरुष का भेद इस प्रकार दर्शावतीं हैं कि नित्य अद्वितीय लोहित शुक्ल कृष्ण, जो सत्व, रज तम तीन गुण तिनके द्वारा जगत को सृष्टि स्थिति लय करती जो मूल प्रकृति तिससे पुरुष परमात्मा प्रतिविम्ब रूपसे भासमान होते हैं, औ प्रलयकाल से फेर उसको परित्यागकर स्वयं शुद्धरूप होते और सोई मूल प्रकृति से धर्म्म ज्ञान इच्छादि रूप महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती महत्तत्वसे अहङ्कार तिससे एकादश इन्द्रिय औ पञ्च तन्मात्रा तिनसे आकाशादि पञ्चभूत प्रगट होते हैं, और एकादश इन्द्रियोंमे मन चक्षु श्रोत्र घ्राण रसना औ त्वक् ए छ ज्ञानेन्द्री औ वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ ए पांच कर्मेन्द्री हैं ऐसेही चौविश तत्व कहती भई, तो मैने भी

अपनी अभिप्राय प्रकाश किया कि, आदि पुरुष जगत के समवायि कारण हैं, सो सुन वे दोनो उपहास कर बोलीं कि,एरी मूर्ख ! सुन परमाणु समवायि कारण है, ईश्वर को निमित्त मात्र जान,क्योंकि कार्य्य नाश से समवायिका नाश है, यथा तन्तु पटसे तब मैने कहा नही कार्यनाश मे भी कारण रहता है, यथा कटक कुण्डलादि मे देखो, नहीं तो तुमारी मूल प्रकृति का भी नाश प्राप्त होता है और तुमने उसको नित्य कहा है, तो वह फेर बोली कि, जगत का भी नाश नहीं है, जैसे बीजसे अंकुर औ कूर्म्म की देह मे उसके कर चरणादि अङ्ग सूक्ष्म औ सङ्कोच रूपसे रहते, तैसेही जगत भी सूक्ष्मरूपसे मूलमे रहता है.

तब विवेकने कहा कि, क्या आश्चर्य्य है कि वे दुर्बुद्धि तर्कविद्या इतना भी नहीं जानती कि ईश्वर से यह जगत उत्पन्न है, और वह जलमे प्रतिबिम्बका कारण जो बिम्ब तिसके तुल्य कारण है, और ईश्वर मे जो जगतकी प्रतीति सो भ्रममात्र है, जैसे सूतीमे रजत की

रस्सीमें सर्प सूर्य्यतेजसे जलकी भ्रम होती है, और जो ईश्वर मे विकार की शङ्का है सो तो नटवेषके तुल्य जानो, कि नाना वेष धारण क-रते भी नट वही है, किन्तु रूपका विकार होता है, और ईश्वर तो आकाश के तुल्य सकल पदार्थ मे रहते भी सब से भिन्न हैं, भला देखो तो राग द्वेषसे रहित अजन अचय सदा प्रका-शमान निर्गुण निरवयव जोतिरूप ईश्वर सो क्या कभी भी विकारी हो सकते है, जैसे आकाश मे बार बार मेघ प्रगट हो, श्याम, श्वेत, रक्त, पीतवर्ण देख पडते तो क्या आकाशकी निर्मल-लता कहीं चली जाती, तैसे जगत भी ईश्वर से बारबार होता जाता पर वै तो निर्मल निर-ञ्जन ज्यं के त्योंही बने रहते हैं, यह सुन आत्मा ने विवेक के उपर प्रसन्न हो धन्यवाद दिया, औ उपनिषद से पूछा कि, फेर क्या भया.

तब उपनिषद बोली कि, मेरे मुखसे जगत मिथ्या औ ब्रह्महीं सत्य यह बात सुन वै सब तर्कविद्या कहने लगीं कि, प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध पदार्थ को मिथ्या कहती यह नास्तीक

मार्ग से गमन करती ऊई, देखो जगत के मिथ्यात्व में युक्ति दिखावती है, इससे इस को मारो ऐसे कह कर ज्यों दौडीं कि त्यों मैं दण्ड-कवन की ओर बड़े वेग से भगी और जाय मधुसूदन के मन्दिर के निकट पऊंची परन्तु वे भी वहां आय कर स्वकपोल-कल्पित तर्करूप कांटोंसे मार मार मेरी सारी शरीर को जर्जरीभूत करदिया कि इतने में श्रीमधुसूदन जी के मन्दिरसे कितने एक गदापाणि पुरुष निकलकर उन सबको अति निर्दयता से मार भगाया औ मैं भी भयके मारे अति भीता श्रीगीताके आश्रम में गई, अर्थात् [उपनिषद का सारांश गीता में है, तो तहां मेरी कन्या गीता हमें तैसी भीता देखकर बोली कि, माता! हम सकल वृत्तान्त जानती हैं; कि तमोगुणके अवलम्बी लोग तुमारा अनादर करके यथेष्ट आचरण करते हैं, इस निमित्त तुम अपने मनमें कुछ खेद न करो उनके शासनकर्त्ता परमेश्वर हैं, देखो ईश्वर ने निज मुखसे कहा है कि क्रूर पापी तमोगुणी नरों को स्वर्ग से भी

मै इस घोरतर संसार नरकद्वारसे असुर योनि के मध्य फेंकता हूं, यह सुनकर अति हर्ष से आत्माने जिज्ञासा किया, कहे पूछा कि, सो परमात्मा किसका नाम है, यह तुमारे प्रसादसे हम जानने की इच्छा करते हैं. उपनिषद ने हंसकर उत्तर दिया कि, आप अपने को भूले भये को समझावने को कौन समर्थ है, जैसे (जागते मनुष्य को जगावै कोई कैसे कर, जानि अनजानको जनावै कहो कसे नर) आत्मा बोले कि, यह क्या कहती हौ हम क्या परमेश्वर हैं? उपनिषदने उत्तर दिया, हां तुमही परमेश्वर हौ सो सुनो कि सोई जो नित्य ईश्वर सो तुमसे भिन्न नहीं औ न तुम उनसे ही पृथक् किन्तु सोई तुम अनादि माया के प्रभाव से मायारूप मुकुरमे जीव नाम प्रतिबिम्ब रूप प्रकाशमान होते हौ, जैसे जलमे सूर्य्य प्रतिबिम्ब रूप दृष्ट होते हैं. तब आत्माने विवेकसे कहा कि, उपनिषद देवीने आश्चर्य्य कहा, सो तो अबोध अथवा दुर्भाग्य वशते हमारे मन मे प्रतीति नहीं होती. विवेक बोले, कि मुक्तिके

प्रति ब्रह्मका तत्व ज्ञान कारण है, परन्तु, सो ज्ञान सकल पदार्थों के साधर्म्य वैधर्म्य विचार के द्वारा द्रव्यादि षट् पदार्थ के ज्ञान विना प्रगट नहीं होता है, देखो अतन्निरसनसे जो पदार्थ सो आत्मतत्व ज्ञान का कारण है, जैसे गवादि के ज्ञान विना क्या मनुष्य तद्भिन्न बोध होता है, आत्माने कहा कि, तो हे विवेक! हमको पदार्थज्ञान का उपदेश करो, विवेक बोले कि, (एषो.स्मीति विविच्य नेति परितस्त्वि-स्तेन सार्द्धङ्कृते। तत्वानां विलये चिदात्मनि परिज्ञाते तदर्थं पुनः॥ श्रुत्वा तत्वमसीति बाधितमवश्यान्तं तदात्मप्रभम् शान्तं ज्योतिरनन्तमन्तरुदितानन्दं समुद्योतते॥१॥

अर्थ प्रथम घटपटादि भाव पदार्थ ब्रह्मसे भिन्न हैं, ऐसे वैज्ञानिक भाव पदार्थोंकी सत्यता का विचार कर, पीछे उनकी असत्यता के विचार से मनके सहित तावत वैज्ञानिक पदार्थ की विलय करने से अर्थात् सकल पदार्थ असत्य केवल ब्रह्महीं सत्य ऐसी निश्चय होने पर तत्त्वमसि इस वाक्यके श्रवणसे अन-

न्तर अर्थात् ब्रह्मविषयक मननके पश्चात् अहं ब्रह्मास्मीति शब्द पदने कहेजाते शुद्ध चैतन्यस्वरूप परब्रह्म निश्चय होनेपर जीवका आत्मजात राग द्वेषादि रहित नित्य सुख स्वरूप ब्रह्म विषयक, संसाररूप अन्धकारके नाश करनेवाली तत्त्वज्ञानरूप अग्नि प्रज्वलित होती है, विवेकसे यह सुन आत्मा दिन रात ब्रह्म की चिन्ता मे लगे, कि इतने मे निदिध्यासन रङ्गभूमिसे आय कर कहने लगा कि, हमको विष्णु भक्तिदेवीने यह आज्ञा दिया कि, पुत्र! तुम हमारी यह गुप्त अभिप्राय अर्थात् विद्या औ प्रबोधकी उत्पत्तिका उपदेश विवेक औ उपनिषद को सुनायकर आत्माके हृदय मे वास करो, इतना कह जो देखा तो उपनिषद औ विवेक दोनो आत्माके निकट ही हैं; इसने भी निकट जाय विष्णुभक्तिका वह सन्देशा कहा कि, देवता सङ्कल्प योनि कहे मानस ध्यानसे उनकी उत्पत्ति होती है, इससे भ॰ नामाकही दे तुम्हारे विद्या नाम कन्या औ प्रबोधचन्द्र नामक पुत्रका जन्म होगा, और हमने भी यह बात

समाधानसे सुना है कि, तुम गर्भवती हो तो आकर्षण विद्यासे विद्या को मनके साथ मिलाय औ प्रबोध को आत्माको सौंप तुम विवेकके साथ हमारे निकट को चली आओ, यह सुन उपनिषद्देवी विवेक के सहित रङ्गभूमिसे चली गई, औ निदिध्यासन आत्मामे प्रवेशकर गये, आत्मा भी ध्यानमे परायण भये, कि इसी वीचमे नेपथ्य के भीतर कोलाहल उठा कि, यह क्या आश्चर्य हैं, देखो उज्जल किरणजाल से दिग्मण्डलको विद्युत औ अनलके तुल्य प्रकाश करती भई, मनके कुलिश सदृश उरस्थल को विदीर्ण करके यह विद्या नाम कन्या मोहके सकल परिवारको ग्रास कर समाय गई, और श्रीमान् प्रबोधचन्द्र नाम पुत्र कहे तत्त्वज्ञान ने उत्पन्न होतेही आत्माका अवलम्बन किया अर्थात् श्रवण मनन औ निदिध्यासन के अनन्तर विद्या की उत्पत्ति होती तथा विद्या के प्रगट होतेही मोहादिका नाश औ तत्वज्ञानकी उदय होती है.

तिस पीछे प्रबोधचन्द्र रङ्गभूमिमे प्रवेशकर